Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

॥ ओ३म् ॥

जन ज्ञान

मासिक

मार्च : १९७६

चैत्र : २०३०

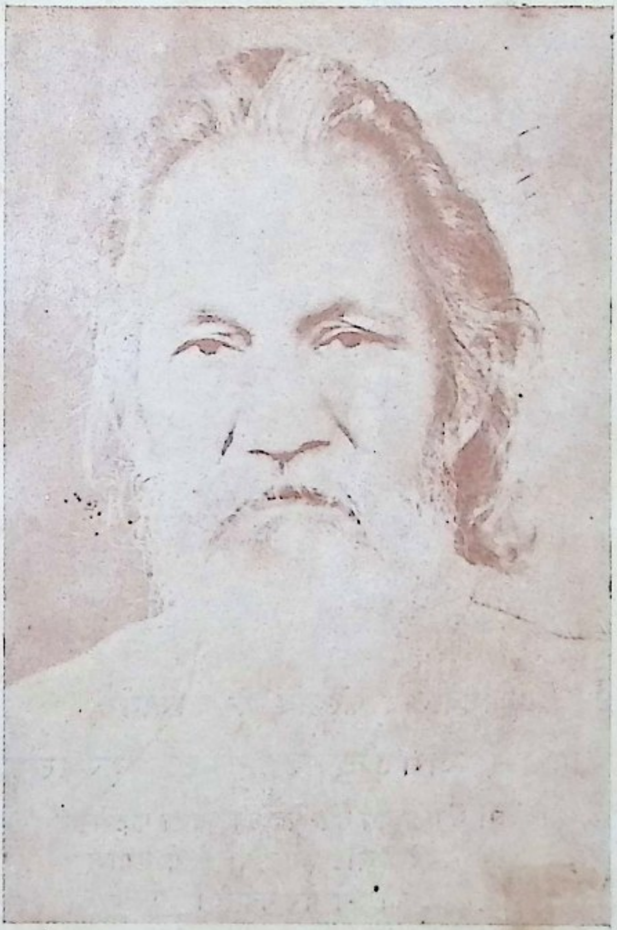

'वेद' प्रचार के लिए जीवन अर्पण करने वाले

स्व० पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दयानन्द संस्थान के आचार्य

स्वामी जगदीश्वरा नन्द सरस्वती

विदेशों में एक वर्ष तक वेद की ध्वजा फहराकर
आप स्वदेश लौट आए हैं। आर्य समाज
को उन पर गर्व है।

फार्म ४ (नियम ८ देखिये)

१. प्रकाशन स्थान दिल्ली, २. प्रकाशन अवधि साप्ताहिक, ३. मुद्रक प्रकाशन-सम्पादक का नाम पंडित राकेशरानी, ४. (क्या भारत का नागरिक है) हाँ, ५. (यदि विदेशी है तो मूल देश) पता १५६७ हरध्यानसिंह मार्ग, नई दिल्ली-५, ६. उन व्यक्ति के नाम व पते जो समाचार-पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार तथा हिस्सेदार हों। दयानन्द-संस्थान (पंजीकृत न्यास)

मैं, राकेशरानी एतद् द्वारा घोषित करती हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

तारीख २८-२-७६ [illegible]

प्रकाशक के हस्ताक्षर

राकेशरानी

Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दयानन्द संस्थान
नई दिल्ली का प्रकाशन

जन-ज्ञान
मासिक

सम्पादक
राकेश रानी
सह सम्पादक
—सुमेधा स्नातिका—
दूरभाष : ५८६६३९

पता
१५६७ हरध्यानसिंह मार्ग
[निकट ३१, नाईवाला]
करौलबाग, नई दिल्ली-५

वार्षिक मूल्य १५)
विदेश में ३ पौंड
(हवाई डाक से)
२ पौंड : समुद्री डाक से
आजीवन : २५१

वर्ष ७ : अंक ११
चैत्र संवत् २०३२
मार्च १९७६

जो भी तुम चाहते हो

मेरा मन तुम्हारे साथ गीत नहीं गा सकेगा !
मेरे सरगम लय-ताल-स्वर गति से मुक्त हैं,
लकीरें तोड़कर चलना मेरा स्वभाव है !
नयी लकीरें खींचने का प्रयत्न सदा करता रहा हूं,
मैं चलता रहा हूं !
तुम घिसे पिटे रोते से,
सिसक सिसक कर चलते हो !
मन में तुम्हारे कुछ भी हो,
पर ऊपर से उदासी छायी है !
लगता है सारी चेतना सपनों में,
भूलकर—समय काट रहे हो !
केवल दुःख वांट रहे हो,
माया का बंधन तुम्हें प्रिय है,
शरीर की सजावट तुम्हारा इष्ट है !
तुम काल खंड के स्थिर प्रतीक हो,
उषा या संध्या का भेद भूल कर,
तुम सबको समान मानकर,
पद यात्रा कर रहे हो !
जीते जी मर रहे हो ! !
पर मेरा यह विश्वास है,
मैं तुम्हारे मन की गांठें खोलूँगा !
जीवन की उलझी झंकृतियां
अमृत रस में घोलूँगा !
और दूँगा
तुम्हें प्रकाश, प्रेरणा, प्राण !
मेरे साथ आओ,
चलो प्रकाश की ओर, प्रभु से मिलने !
उसे जानने और,
अपने को पहचानने !
इसके वाद तुम्हें सब कुछ मिल जाएगा,
जो भी तुम चाहते हो !

—भारतेन्द्र नाथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दयानन्द चित्र दर्शन

(अब छप कर तैयार है)

७२ पृष्ठ : ५ रंगों में छपी

एक ऐसी पुस्तक : जैसी पिछले १०० वर्ष में नहीं छपी : सर्वश्रेष्ठ कागज पर सुनहरी बढ़िया कपड़े की जिल्द और

मूल्य केवल २०) रुपए

किन्तु रियायती मूल्य का समय १५ अप्रैल १९७६ तक बढ़ा दिया है।

६००) की १०० २००) की २५

३५०) की ५० १००) की १०

और १५) की एक प्रति

शीघ्र से शीघ्र मंगा लें : स्टाक थोड़ा है।

संस्कार विधि

छोटा साइज : सजिल्द ४)

बड़ा साइज : सजिल्द ६)

सत्यार्थ प्रकाश

२००) सैकड़ा

ऋषि जीवनी

१००) सैकड़ा

दयानन्द संस्थान

नई दिल्ली-११०००५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सम्पादकीय

आप क्या करते हैं ?

प्रत्येक कार्य के दो पक्ष होते हैं। एक पक्ष अपने लिए एक पक्ष दूसरों के लिए। अपने पक्ष के लिए तो सभी काम करते हैं, साधन जुटाते हैं, इस काम में प्रायः सभी का मस्तिष्क खूब चलता है।

किन्तु दूसरे पक्ष के लिए काम करने वाले विरले ही होते हैं। जो दूसरों के लिए कुछ करे, वह हमारी दृष्टि में देवता है।

महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज के ९वें नियम में बताया है कि—

प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिए किन्तु, सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

मनुष्य जाति एक है। इसमें दो भेद हैं—असुर और 'आर्य'।

—जो अपने लिए ही जीता है वह 'असुर' है।

--जो अपने साथ ही दूसरों के लिए भी कार्य करता है वह है 'आर्य'

अव आप स्वयं सोचिए कि क्या आप दूसरों के लिए कुछ करते हैं ?

—क्या कभी किसी अनजान ग़रीब बीमार की आपने सेवा की है ?

—क्या आप किसी और की मुसीवत में काम आए हैं ?

—क्या आपने किसी का दुःख-दर्द वांटा है ? यदि हाँ तो ठीक, यदि उत्तर न में हो तो फिर वताइए कि क्या आप 'असुर' वनना पसन्द करेंगे ?

यज्ञ, धर्म, दान, सव दूसरों की, कसौटी पर ही परखे जा सकते हैं। जो मेरा है वह "इदं न मम्" मेरा नहीं है। मैं तो केवल प्रवन्ध करता हूँ।

करोड़ों रुपया आपके पास है। पर क्या वह आपके साथ जाएगा ? कोठी-बंगला, कार, आभूषण, वस्त्र क्या धरती से जाते हुए आप साथ लेकर जाएँगे ?

स्वार्थ में अंधे होकर चलते हुए हम जीवन का सत्य भूल चुके। जाने की कल्पना भी कभी हमने नहीं की। परिणाम आपके सामने है। जव जाना पड़ता है तो कितना वोझ होता है, जाने वाले के मन पर ?

हमारा आग्रह है कि अपना चिन्तन वास्तविकता की पृष्ठभूमि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पर बनाओ। कुछ अपने लिए करो, कुछ दूसरों के लिए करो। फिर देखो, आपके जीवन में कैसी रसधार बहती है।

जन-ज्ञान मासिक

जन-ज्ञान साप्ताहिक १५ फरवरी से आरम्भ हुआ। साप्ताहिक के साथ मासिक भी चलेगा और हम इसे और भी अधिक आकर्षक बनाने का प्रयत्न करेंगे।

मासिक की सामग्री साप्ताहिक से सर्वथा भिन्न रहेगी। अतः हमें विश्वास है कि मासिक जन-ज्ञान के सदस्य इसके और भी अधिक सदस्य बनाकर हमें सहयोग देंगे।

हम जो कुछ भी कर पा रहे हैं, उसका सारा श्रेय हमारे मान्य सदस्यों को है। सबका प्यार पाकर हम बढ़ते रहे हैं और विश्वास है कि स्नेह व आशीर्वाद की यह धारा अमृत रूप में सदा हम पर बरसती रहेगी।

वेद भाष्य पूरा हो गया

प्रभु कृपा से वेद भाष्य का प्रकाशन पूर्ण हो गया। बिना साधनों के आरम्भ किए गए इस काम को पूरा करना प्रभु की कृपा बिना सम्भव नहीं था। सारे आयोजन पर २५ लाख रु० व्यय हुआ।

संसार के ज्ञात इतिहास में प्रथम बार १५,५००० वेद का भाष्य ज्ञान छापने का गौरव जन-ज्ञान के सदस्यों को प्राप्त हुआ। यह कितने बड़े गौरव की बात है।

प्रभु साक्षी हैं और सभी के समक्ष यह प्रत्यक्ष है कि 'दयानन्द संस्थान' ने जो भी घोषणाएं की हैं वे पूरी की हैं। जिन्होंने भी आरम्भ में वेद भाष्य के सम्बन्ध में भ्रांतियां फैलायीं थीं वे सोचें विचारें कि उन्होंने वेद की कितनी बड़ी सेवा (?) की है।

अभी कार्य का आरंभ है। हमारा कार्य तब तक जारी रहेगा जब तक संसार के हर घर में (वेद) की प्रतिष्ठा नहीं हो जाती।

आप का स्नेह, प्रभु का आशीर्वाद मिलता रहेगा, तो सफलता दूर नहीं रहेगी।

—राकेश रानी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नया वैदिक साहित्य

१. धरती का स्वर्ग : गृहस्थाश्रम

लेखक—श्री पं० शिवकुमार शास्त्री काव्य व्याकरण तीर्थ, संसद् सदस्य।

पं० शिवकुमार जी शास्त्री आर्यसमाज के पुराने महोपदेशक रहे हैं। पिछले ३० वर्षों के अपने अनुभवों को उन्होंने "धरती का स्वर्ग" नामक पुस्तक में प्रस्तुत किया है।

गृहस्थाश्रम को कैसे स्वर्ग बनाया जाए ? इस विषय में शास्त्री जी का मार्गदर्शन सभी के जीवन को नयी प्रेरणा देने में समर्थ है।

पुस्तक का मूल्य लागत मात्र १)५० है।

२. उपदेश-मञ्जरी

महर्षि दयानन्द के उपदेशों का यह संग्रह प्रचार की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य २), किन्तु १०० मंगाने पर केवल १००) सैकड़ा।

३. धर्म का सार

स्व० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय लिखित यह पुस्तक प्रचार के लिए अत्यन्त उपयोगी है। साधारण व्यक्तियों को समझाने के लिए इसे ६ कथाओं में प्रस्तुत किया गया है। मूल्य १) किन्तु १०० मंगाने पर, ६५) सैकड़ा।

४. महान् दयानन्द

महर्षि दयानन्द को विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रस्तुत करते हुए पं० शिवदयालु जी ने इस अनमोल पुस्तक में प्रस्तुत किया है।

मूल्य १)५० — १००) सैकड़ा

५. आदर्श परिवार

राजस्थान के भूतपूर्व मंत्री श्री युगलकिशोर जी लिखित यह पुस्तक प्रचार व विवाह आदि पर बांटने के लिए विशेष उपहार है।

मूल्य ६० पैसे — ४०) सैकड़ा

६. प्रभु के चरणों में

प्रसिद्ध विद्वान पं० हरिशरण जी द्वारा सामवेद के कुछ मंत्रों की सरल व्याख्या प्रार्थना रूप में प्रस्तुत की गयी है। मंत्रों को पढ़ते हुए साधक भाव विभोर हो जाता है।

मूल्य १)५०

अधिक से अधिक मंगाएं : बांटें

जन-ज्ञान प्रकाशन नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मैं हृदय मन्दिर से लिख रहा हूँ—

काम पर विश्वास करना कब आरम्भ होगा !

दीपमाला १९७२ के दिन 'दयानन्द-संस्थान' की स्थापना हुई थी। तब से आज तक हमने जो कहा उसे पूरा किया।

जब वेदभाष्य की घोषणा की थी तब कुछ कृपालु जनों ने कहा था, वेद भाष्य ये नहीं छाप सकते। सारा धन खा जाएंगे। हम मौन रहे, हमने कहा था, सब से बाद में—१ वर्ष बाद में आरंभ किया है, सब से पहले देंगे।

विघ्न आये, बाधाएं आयीं, मँहगाई बढ़ी, पर प्रभु ने लाज रखी और सारा वेद भाष्य सब से पहले छप गया। धन्यवाद सभी का।

संसार के ज्ञात इतिहास में पहली बार १५,५०० वेद भाष्य 'दयानन्द संस्थान' ने छापा। पिछले १०० वर्षों में सारे संगठनों ने मिलकर जितना वेद भाष्य छापा उससे अधिक आप के संस्थान ने ३ वर्ष में प्रसारित किया।

भारत के घर-घर में 'वेद' का नाम गूंजा। सभी प्रमुख समाचार-पत्रों में घोषणाएं छापीं। आकाशवाणी से वेद का नाम गुंजाया और सारे भारत को बताया कि परमात्मा की अमर वाणी 'वेद' सब के लिए अब सुलभ है।

'वेद' सब का है। वेद के प्रति सभी की श्रद्धा है। 'वेद' का प्रचार ही हमें लक्ष्य तक पहुंचा सकता है। पिछले ३ वर्ष में हम ने इस सत्य को भली भांति समझ लिया।

सत्यार्थ प्रकाश अब तक आप का संस्थान लाखों छाप चुका है। उसे ५-६ प्रकारों में प्रकाशित कर चुका है। लागत से अत्यन्त कम मूल्य पर देकर उसने सत्यार्थ प्रकाश का प्रचार कर लक्ष्य की ओर बढ़ने का प्रयास किया है।

ऋषि जीवन के १३ संस्करण लाखों की संख्या में छप चुके हैं।

छोटी बड़ी १७५ पुस्तकें छप चुकी हैं, जिस की तुलना नहीं।

जन-ज्ञान अंग्रेजी, जन-ज्ञान हिन्दी, मासिक और अब जन-ज्ञान साप्ताहिक संस्थान चला रहा है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

संस्थान का व्यय आर्यसमाज के सभी प्रचारक संगठनों के कुल प्रचार व्यय से कहीं अधिक है।

कार्य हो रहा है, संस्थान बढ़ रहा है, और बिना पूंजी के साधनों के बढ़ रहा है। उस के पास केवल प्रभु का आशीर्वाद ओर जनता का सहयोग है।

संस्थान आर्य जनता की सम्पत्ति है। वह हमारा नहीं है। हम उसके हैं। हमारे परिवार के किसी भी सदस्य का परिवार का अंग होने के नाते संस्थान पर कोई अधिकार नहीं है।

हम सुबह ८ बजे से रात के १० बजे तक अनवरत जो बनता है, काम करते हैं। किसी पर अहसान के लिए नहीं अपितु इसलिए कि हमारा अपना सब कुछ ऋषि के चरणों में अर्पित है।

हमारे पास या हमारे परिवार के किसी भी सदस्य के पास संसार के किसी भी बैंक में ५००) भो नहीं हैं।

हम ने एक पैसे के आभूषण भी परिवार के किसी सदस्य के लिए नहीं बनवाए। हमारे पास यदि कुछ होता भी तो उसे दयानन्द के लक्ष्य हेतु अर्पित कर हमें जो हर्ष होता, उसकी कल्पना भी शायद आप नहीं कर सकते।

हम काम कर रहे हैं। अकेले चल रहे हैं। चलते रहेंगे। हमारे पास योजना नहीं है। काम है। हमारा काम ही हमारी बात का प्रमाण है।

जिन्हें हमारे काम को देखकर हम पर विश्वास आए, हम केवल उन्हें सहयोग के लिए निमन्त्रित करते हैं।

बहुत कुछ करना है, आगे बढ़ना है, देश बदलना है। जितने साधन मिलते जाएंगे हम बढ़ते जाएंगे, आर्यसमाज बढ़ता जाएगा।

दयानन्द संस्थान दयान्नद स्वामी का प्रहरी और प्रतिनिधि बन कर सारे देश को वेदमय करने के लिए उत्सुक है। हमारे पास सब कुछ है, पर धन नहीं है।

यदि ऋषि दयानन्द के अनुयायी पार्टी, दल और विवादों से ऊपर उठकर काम के महत्त्व को समझें और हमें पूरा सहयोग दें, तो हम अगले १० वर्षों में सारे देश का रेखाचित्र बदल सकते हैं।

जीवन के अन्तिम क्षण तक हम मंजिल की ओर बढ़ते रहेंगे। आप को भी श्रद्धा हो काम पर, ऋषि पर तो, हमारे साथ आइए और भारत में फिर से सतयुग लाने के लिए संस्थान को सहयोग दीजिए। **—भारतेन्द्र नाथ**

चैत्र संवत् २०३२

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भारतीय आर्य प्रतिनिधि सभा का आवाहन

देश के ५५ करोड़ नागरिकों को सत्य धर्म से परिचित कराने के लिए सभा प्रत्येक ऋषि भक्त का आवाहन करती है।

ग्रामों में, नगरों में, वनों पहाड़ों में सर्वत्र जहां भी अधर्म है, अज्ञान है वहां दयानन्द के वीर सैनिक पहुंचें और अपनी गुरु गम्भीर वाणी से ज्ञान का आलोक बिखराएं।

नागालैंड, मेघालय, अरुणांचल, केरल और देश के अनेक अन्य भू-भाग आज ईसा के शिष्य बन चुके हैं। राम-कृष्ण के अनुयायी बाइबिल का प्रसार कर रहे हैं। धर्म का सत्य स्वरूप समय के प्रभाव प्रवाह ने गंदला कर दिया है।

ऐसे में ऋषि दयानन्द का कोई भी अनुयायीं मूक दर्शक बन कर नहीं बैठ सकता। आज तो कुछ करना होगा या मरना होगा।

'सभा' की स्थापना का उद्देश्य है, विचारों की क्रान्ति। सारे देश में असमानता, जाति-भेद, मत-वाद और वर्ग की दीवारों को समूल नष्ट करने के लिए सभा ने संघर्ष का शंखनाद किया है।

सत्यार्थ प्रकाश हमारा ब्रह्मास्त्र है। वेद हमारा लक्ष्य है और सब को प्रभु का अमृत पुत्र बनाना हमारा कार्यक्रम है।

आर्यसमाज के सारे संगठन अपनी अपनी समस्याओं में उलझ चुके हैं। प्रचार नहीं पद, प्रसार नहीं संग्रह, उनका लक्ष्य बन गया है।

क्रान्ति उनके रक्त में नहीं, निर्माण उनके पास नहीं, इसलिए केवल लकीर पीटना ही उनका जीवन मंत्र है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भारतीय आर्यप्रतिनिधि सभा उन व्यक्तियों को 'ओ३म्' के झंडे के नीचे आने का निमन्त्रण देती है जो अपने रक्त से भारत मां को तिलक कर सकें। जो प्राण दे सकें इसलिए कि देव दयानन्द का दिव्य स्वप्न पूर्ण हो। गंगा की धारा पर, यमुना के तीर, गोदावरी, नर्मदा और कन्याकुमारी के प्रांगण में वेद की ऋचाएं गुंजाने के लिए जो सर्वस्व समर्पित कर सकें।

भाई आओ, बहनो आओ, युवको आओ और अगले ग्रीष्मावकाश में ग्रामों में फैल जाओ। एक-एक युवक कम से कम ३-३ हजार आर्य सदस्य बनाए। एक-हजार सत्यार्थ प्रकाश और जीवनी फैलाएं।

सारे देश को दयानन्द की जय के स्वरों से गुंजा दो। सब के मन पर 'ओ३म्' पताका फहरा दो। उठो, आगे बढ़ो और काम करो।

'सभा' उन्हें पुकारती है जिन्हें श्रद्धा है दयानन्द पर, वेद पर और सत्य पर...........

बात बातों से हरगिज बनेगी नहीं,
वक्त आया शहीदी कफन चाहिए।
तमन्ना जिसे हो, कि बदले जमाना,
हमें आज उन का ही सिर चाहिए।

समय देने और कार्य करने के इच्छुक सम्पर्क करें। प्रधानमन्त्री, भारतीय आर्य प्रतिनिधि सभा, वेद मन्दिर, ३१, नाईवाला करौल बाग नई दिल्ली-११०००५

धर्म प्रचार केन्द्र खोलिए !

हमारी इच्छा है कि आर्यसमाजें अपने क्षेत्र के तीर्थ स्थानों में धर्म प्रचार केन्द्र खोलें।

केन्द्र का आधा व्यय संस्थान देगा। सभी स्थानों पर प्रचार के लिए अलग ढंग की व्यवस्था करनी होगी।

सारे देश को आर्य बनाने के लिए हम कृत संकल्प हैं। इस इच्छा की पूर्ति बातों से नहीं काम से होगी।

सोना छोड़िए और कुछ करने का व्रत लीजिए।

मंत्री
दयानन्द संस्थान नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

योग साधने से पूर्व शरीर साधिये !

—स्व० ब्र० जगन्नाथ पथिक

योग एक वैज्ञानिक कला है आत्म साक्षात्कार की। योग से मानसिक शक्तियां विकसित होती हैं और देह में निहित आत्मतत्त्व प्रकाशित होता है। प्रत्येक विज्ञान का क्रियात्मक ज्ञान उससे सम्बन्धित प्रयोगशाला से प्राप्त होता है, जहां उसके अनुकूल सब द्रव्य और यन्त्र उपस्थित होते हैं, तथा उन द्रव्यों के संश्लेशण-विश्लेपणों से भी हम परिचित हों।

योग की प्रयोगशाला है हमारी अपनी देह, देह में मन-बुद्धि-चित-अहंकार ये साधन चतुष्टय यन्त्ररूप हैं, अभ्यास तथा वैराग्य, एकाग्रता यन्त्रों के यथार्थतः प्रयोग में मुख्य सहायक हैं। योग विज्ञान की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि निज देह की प्रयोगशाला को सुव्यवस्थित रखा जाय और यन्त्रों का कुशलतापूर्वक यथार्थ प्रयोग किया जाए।

योग का सिद्धान्त है कि स्वभावतः शुद्ध-बुद्ध-मुक्त निरंजन आत्मा, मन बुद्धि के संसर्ग में आकर प्रकृति के बने इन उपकरणों को अविद्या—भूल से ही अपना स्वरूप समझ बैठा है, क्योंकि आत्मा अल्पज्ञ तो है ही। इसी भूल का परिणाम है राग द्वेष जन्य सुख और दुःख। अन्तः करण जड़ है परन्तु आत्मा के प्रकाश से भास्वर होकर क्रियावान् हो रहा है, जैसे चुम्बक के आकर्षण से लोहा क्रियायुक्त हो जाता है। आत्मा अविद्यावश मन बुद्धि जन्य व्यापार को अपना व्यापार समझ बैठा है। यथा वेदना मेरे पिता, माता, पुत्र वा किसी मित्र को है परन्तु रागवश हो रहा हूं मैं। जैसे वह अध्यक्ष वा शासक अयोग्य समझा जाता है जो अपने भृत्य वर्ग से कार्य न लेकर, स्वयं ही कार्य में जुट जाए और कर्मचारी वर्ग का अनुचर बन जाए, वैसे ही यह स्वामी आत्मा मोहवश मन बुद्धि आदि अनुचरों में इतना मुग्ध हो गया है कि इनके धर्मों तथा इनके द्वारा सम्पादित कर्मों को, अपना ही धर्म-कर्म समझने लगा, उनसे निज को सुखी-दुःखी मानने लगा। यही अविद्या-मोह वा अज्ञान है। इसी अविद्या-अज्ञान को दूर करना योग का ध्येय है, लक्ष्य है। इस अविद्या के नष्ट हो जाने पर, सर्वशक्ति सम्पन्न-द्रष्टा, अन्तःकरण का स्वामी आत्मा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अपने स्वरूप को पहचान कर प्रकृतिजन्य राग द्वेषादि क्लेश-कर्म बन्धनों से मुक्त हो जाता है। अब यह स्पष्ट हो गया कि योग का लक्ष्य है आत्मसाक्षात्कार करा देना।

यदि हमें आत्मा में बिश्वास है तो हमें आत्मा का अनुभव साक्षात् करना वा साक्षात् होना चाहिए, अन्यथा आत्मा में विश्वास नहीं करना चाहिए। दम्भी होने की अपेक्षा नास्तिक होना उत्तम है। ये शब्द विवेकानन्द जी के हैं, और इसी सत्य की अनुभूति के लिए योग का उद्‌भव हुआ है।

योगाचरण का अधिकार बिना किसी भेदभाव के नर-नारी मात्र को है, साधु-संन्यासियों के लिए ही योग है, यह धारणा अशुद्ध है। हां, जिस व्यक्ति के हृदय में पिपासा-अभीप्सा, श्रद्धा, विश्वास है वही इसका अधिकारी है। फिर चाहे वह कोई भी हो।

योग में प्रविष्ट होने के लिए आवश्यक है कि देह शुद्ध और स्वस्थ हो, भोजन शुद्ध, सात्त्विक, स्वल्प हो। श्रद्धा, विश्वास, अभीप्सा और पिपासा हो।

प्राणायाम, नेति, धौतिः, आसन, वस्तिः, वमन आदि हठयोग की क्रियाएं राजयोग में सहायक अंग हैं, साधन हैं, सहायक हैं यदि मर्यादा से किए जाएं, ये ही योग नहीं हैं। ये साधन हमारे देहस्थ मलों को निकाल कर शुद्ध, लघु, स्वस्थ बनाने में सहायक हैं।

शुद्ध सात्त्विक भोजन के विषय में इतना तो सभी जानते हैं कि दूध, फल, अन्न सात्त्विक हैं, परन्तु वर्तमान विज्ञान के अनुसार एक 'विटामिन' नामक वस्तु ज्ञात हुई है जो देह में उचित अनुपात में विद्यमान न हो तो देह स्वस्थ नहीं रहती। परन्तु यह अभी ज्ञात नहीं हुआ कि बिटामिन का स्वरूप क्या है? परन्तु इतना ज्ञात हो गया है कि अमुक-अमुक विटामिन के अभाव से अमुक-अमुक रोग वा हानि होती है। यथा...

१. विटामिन सी के अभाव से नेत्रों के रोग तथा अन्धा तक भी हो जाता है, इसके अभाव के पूरक पदार्थ हैं, केला, सन्तरा, नाशपाती, टमाटर, दूध दही, मक्खन पनीर।

२. विटामिन बी के अभाव से अजीर्ण, भूख की न्यूनता, वातज रोग, देह में क्लान्ति, थकावट, तापमान में न्यूनता हो जाती है अतः आलू, शलगम, गाजर, बन्द-गोभी, टमाटर, सेब, आड़ू, नींबू, मूली का सेवन उचित है।

३. कैलशियम के अभाव से दांतों के रोग होते हैं, दांत शीघ्र बिकृत होकर गिरने लगते हैं, मनुष्य सारा दिन ऊंघता रहता है, थकावट अनुभव करता है अतः सलाद के पत्ते तथा अन्य कच्चे फल सेवन करें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

४. फासफोरस के अभाव से अस्थियां दुर्बल हो जाती हैं अतः ····· दूध, मक्खन, घृत खाएं।

५. मैंगनीशियम के अभाव से जननेन्द्रिय पर बुरा प्रभाव पड़ता है अतः दालें, मटर, लोभिया, तथा फलों में तरबूज का सेवन आवश्यक है।

इसके साथ-साथ कार्बोदित, स्नेह, और प्रोटीन की उचित मात्रा देह में उपस्थित रखने के लिए १०० कैलोरी उष्णता की मात्रा रखने के लिए ६० प्रतिशत कार्बोदित, ३० प्रतिशत स्नेह और १० प्रतिशत प्रोटीन हो अतः १—चीनी, गुड़, शक्कर, २—सब दालें, और अनाज, ३—सूखे फल, और अखरोट, ४—आलू, ५—पत्र शाक, ६—ताजे फल, ७—पनीर, मक्खन, दूध, घी, मलाई, तेल, ८—दूध, दही, मट्ठा, लस्सी, पनीर, पालक, दालें, मटर, तरबूज, सलाद के पत्ते, इनमें प्रोटीन है अतः भोजन में इनका समावेश आवश्यक है, चने बहुत उत्तम हैं। साथ में चना पोटाश, सोडियम, लोहा, मगनेशियम, जस्त, ताम्बा, फास्फोरस, गन्धक, क्लोरीन, आयोडीन, आदि खनिज पदार्थ—लवण भी आवश्यक हैं।

कहा है, आहार शुद्धौ सत्त्व शुद्धिः, दध्नः यथा मथ्यमानस्य सर्पिः समुदिशति एवं वा अरे अन्नस्य प्राश्यमानस्य मनो समुदिशति'···अर्थात् भोजन शुद्ध होगा तो मन शुद्ध होगा, आहार शुद्ध होगा तो बुद्धि होगी, जैसे दही के मथने से मक्खन निकलता है, वैसे ही भोजन से मक्खनवत् मन बनता है। अतः युक्त आहार-व्यवहार पूर्वक योग का साधन करने से दुःख निवृत्ति होती है, अन्यथा दुःख वृद्धि होती है।

पुनश्च—श्रद्धामयोऽयं पुरुषः, श्रद्धावांल्लभते ज्ञानम्, श्रद्धत्स्व आदि वचनों से तात्पर्य है कि श्रद्धाविश्वासपूर्वक जो कर्म किया जाता है उसमें सफलता मिलती है। जैसे कि सब कार्यों की सफलता के लिए स्वस्थ देह की आवश्यकता है उसी भांति स्वस्थ श्रद्धा सम्पन्न मन की परम आवश्यकता है, विशेषतः योग में। 'नाविरतो दुश्चरितात् नाशान्तो नासमाहितः, आचार्य यम नचिकेता से कहते हैं—वैराग्यहीन, मनोविकार युक्त, अशान्त, चंचल चित्त व्यक्तियों से यह आत्मा नहीं जाना जाता ·· योग नहीं साधा जाता, नहीं साधा जा सकता।

अभ्यास के लिए, स्वस्तिक, सिद्ध तथा पद्मासन ही उपयुक्त हैं। शेष आसनों का व्यायाम सर्वोत्तम है। इनके करने से देह तथा नस नाड़ियां लचकीली, सुदृढ़ और सशक्त हो जाती है। थकावट नहीं आती, मनुष्य सुगमता से तीन घण्टे तक बैठ सकता है।

प्राणायाम से मनोविकारों का दमन, तथा मानसिक और शारीरिक समत्व की प्राप्ति होती है। भस्त्रा वा अनुलोम विलोम प्राणायाम सरल हैं। प्राणायाम से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पाचन और विसर्जन शक्तियां सवल तथा नियमित हो जाती हैं। अनुमानतः हमारे ७,२०,००,०००, फुफ्फुस कोष्ठों में से साधारण अवस्था में २,२०,००,००० कोष्ठों में ही प्राण का संचार होता है। शेष ५,००,००,००० कोष्ठों में भी प्राणायाम द्वारा प्राण का संचार हो जाता है। अथवा विश्राम के समय ३०० घन इंच में, चलते समय ४०० घन इंच में, दौड़ने से ७०० घन इंच में और अश्वारोहण से १२०० घन इंच फेफड़ों में प्राण वायु प्रति मिनिट में पहुंचती है, परन्तु प्राणायाम से समस्त वायु कोष्ठक आप्लावित हो जाते—भर जाते हैं। तथा वैज्ञानिकों के मतानुसार ४० से ५० सहस्र घन फुट शुद्ध प्राणवायु प्रतिदिन के जीवन के निर्वाहार्थ हमें चाहिए।

प्राण के सम्बन्ध में—

१. हमारा निवास स्थान पुष्कल वायुसंचार युक्त और पुष्कल प्रकाश संचार-युक्त हो।
२. कपड़े थोड़े ढीले और छिदरे पहनो।
३. यथा सम्भव अपनी सब दिनचर्या खुली वायु में करो।
४. रात्रि को भी खुली वायु में सोओ।

भोजन—

१. भूख से थोड़ा कम और धीरे-धीरे चबाकर खाओ।
२. प्रोटीन प्रधान भोजन मत करो—यथा अण्डे-मांस।
३. जल का आवश्यकतानुसार भीतर बाहर खूब प्रयोग करो।
४. कुछ कठोर, भारी, सुपच, कच्चा भोजन भी खाओ।
५. एक बार से अधिक शौचादि से निज को स्वच्छ करो।
६. सदा सीधे बैठो, सीधे चलो, सीधे खड़े होओ।
७. मुख, दांत, जीभ, नख तक सदा स्वच्छ रक्खो।
८. संयम से ही शयन-पठन-खेल आदि कार्य करो।
९. दिन में कई बार दीर्घश्वासन प्राणायाम करो।

१०. शान्त प्रसन्न चित्त रहने का प्रयत्न करो, तभी इस जीवन में तथा योग में सफलता होगी। फिर सिद्धासन से बैठकर नेत्र मूंदकर भ्रूमध्य में अपने ध्यान को बांधो, फिर कुछ समय तक गायत्री का जप करो और ओ३म् के दो भाग करके ओं को मन में उच्चारण करके प्राणों की भ्रूमध्य में ठोकर दो और म् का उच्चारण करते हुए प्राण को धीरे-धीरे बाहर निकालो, लगभग १५ मिनट ऐसा करके फिर शान्त भाव से नेत्र मूंद भ्रूमध्य में ध्यानावस्थित होने का प्रयत्न करो, ध्यानावस्थित हो जाओ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

धर्म शब्द का अर्थ

—श्री विश्वनाथ शास्त्री

धर्म शब्द के अर्थ पर विचार करने से पूर्व यह समझ लेना चाहिए कि शब्दों के अर्थों में समय-समय पर परिवर्तन होता रहता है। अतः किसी भी शब्द के अर्थ का निर्णय करते समय देश-काल पर भी ध्यान देना चाहिए। धर्म शब्द संस्कृत का है। संस्कृत साहित्य में वेद प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। अतः हमें धर्म शब्द के प्रारंभिक अर्थ को खोजने के लिए वेद की ओर जाना होगा। लौकिक संस्कृत में धर्म शब्द का प्रयोग पुल्लिंग में होता है। परन्तु वेद में धर्म शब्द का प्रयोग नपुंसकलिंग में हुआ है। वेद के निम्नलिखित मन्त्र से धर्म शब्द के अर्थ पर प्रकाश पड़ेगा।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।

इस मन्त्र में यज्ञ कर्म को धर्म कहा गया है। इस बात को वाचस्पत्य कोश में धर्म शब्द का अर्थ देते हुए स्पष्ट किया गया है—

धर्म—जैमिनि सूत्र—**चोदना लक्षणोऽर्थो धर्मः। धर्म शब्दस्य यागादि परत्वम्। वेदेऽपि यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। इति यज्ञ शब्द वाच्यमेव धर्म समामनन्ति। लौगाक्षिभास्करेणोक्तः 'यागादिरेव धर्मः।**

अथर्व वेद के पृथिवी सूक्त में १२. १. ४५ में धर्म शब्द का प्रयोग यज्ञ से भिन्न अर्थ में हुआ है—

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नाना धर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती॥

अर्थ—अनेक प्रकार की भाषा बोलने वाले तथा नाना प्रकार के धर्म वाले मनुष्यों को अनेक प्रकार से एक ही घर में रहने के समान धारण करने वाली स्थिर मातृभूमि मुझे धन की सहस्र धाराएँ दे जैसे निश्चल गौ दूध की धारा देती है।

इस मन्त्र में धर्म का अर्थ यज्ञ से बिल्कुल नहीं है। यहाँ धर्म का अर्थ कर्म, कर्त्तव्य, गुण, विचार आदि हो सकता है। अतः स्पष्ट है कि वेद में भी धर्म शब्द किसी एक निश्चित अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है। धर्म शब्द एक से अधिक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।

वेद की व्याख्या करने वाले प्राचीनतम ग्रन्थ निरुक्त में धर्म शब्द का प्रयोग निम्नलिखित पद में हुआ है—

साक्षात्कृतधर्माणः॥

अर्थ—जिन्होंने धर्म का साक्षात्कार किया है। यहाँ धर्म शब्द के अर्थ की ओर कोई संकेत नहीं है। यहाँ धर्म का अर्थ वेदोक्त कर्म हो सकता है।

वैदिक कर्मकाण्ड की व्याख्या करने वाले मीमांसा दर्शन में धर्म शब्द की व्याख्या निम्न प्रकार से की गई है—

चोदना लक्षणोऽर्थो धर्मः॥

अर्थ—वेद विहित कर्म का नाम धर्म है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अतः मोटे रूप में यह कहा जा सकता है कि वेदों में धर्म शब्द का प्रयोग वेद विहित यज्ञ आदि कर्मों के लिए किया गया है।

वेदों के पश्चात् उपनिषदों का उदय होता है। उपनिषद वेद प्रतिपादित सिद्धान्तों का समर्थन करती हैं। इसके साथ-साथ वे कुछ बातों पर विशेष बल देती हैं। छान्दोग्य उपनिषद् में धर्म के तीन स्कन्ध कहे गए हैं। इन स्कन्धों में धर्म के अन्तर्गत यज्ञ के अतिरिक्त अध्ययन, दान, तप आदि सद्गुणों का स्पष्ट रूप से समावेश किया गया है। उपनिषदों में तप और अध्ययन पर विशेष रूप से बल दिया गया है।

उपनिषद् ग्रन्थों से दर्शन साहित्य को प्रेरणा मिली है। दर्शनकारों ने धर्म के दार्शनिक और आध्यात्मिक रूप को निम्नलिखित शब्दों में प्रस्तुत किया है :

यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः स धर्मः ।। (वैशेषिक दर्शन)

अर्थ—जिससे ऐहिक और पारलौकिक सिद्धि हो वह धर्म है। प्राचीन साहित्य में धर्म विशेष रूप में पारलौकिक सिद्धि का साधन समझा जाता था। उपनिषदें निवृत्ति मार्ग की ओर अधिक झुकी हुई थीं। वे प्रेय की अपेक्षा श्रेय को, अपरा विद्या अथवा सांसारिक विद्या की अपेक्षा परा विद्या अथवा ब्रह्म-विद्या को उत्कृष्ट समझती थीं। वे गृहस्थ सुख की उपेक्षा करके संन्यास धर्म को उत्तम स्थान देती थीं। अब दर्शनकारों के हाथ में धर्म शब्द के अर्थ में कुछ विकास हुआ। दर्शनकार धर्म को सांसारिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के सुखों का साधन समझने लगे।

इस के पश्चात् स्मृति साहित्य आता है। स्मृतिकारों ने धर्म को विशेष रूप से लौकिक रूप में देखा है। इन्होंने धर्म के पारलौकिक रूप का तो संकेत मात्र किया है परन्तु इन्होंने धर्म के सांसारिक रूप की विशद व्याख्या की है। स्मृतिकारों ने प्रमुख रूप में वर्णाश्रम धर्म का वर्णन किया है। इस वर्णन में राजधर्म को विशेष स्थान प्राप्त हुआ है। स्मृति ग्रन्थों को धर्म शास्त्र कहा जाने लगा था। ईन धर्म शास्त्रों में अध्यात्म, परलोक, जप, तप, साधना का तो संकेत संक्षेप में ही वर्णन था। इनका मुख्य विषय सांसारिक और राजनैतिक नियम ही थे।

स्मृतिकारों ने धर्म के अध्यात्म रूप को तो कुछ ओझल कर दिया। इन्होंने धर्म को ऐहिक कल्याण के परिप्रेक्ष्य में ही देखा। ऐहिक कल्याण में व्यक्तिगत कल्याण और सामाजिक कल्याण को ही विशेष स्थान प्राप्त होता है। सामाजिक परंपराओं को बनाए रखने के लिए मनु महाराज ने मनुस्मृति में धर्म के सामाजिक रूप को निम्नलिखित श्लोक में उपस्थित किया है—

वेदः स्मृतिः सदाचारः, स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम् ।।

अर्थ—वेद, स्मृति, सदाचार, जो अपने आत्मा को प्रिय लगे—इस प्रकार स्मृति ने धर्म के चार लक्षण कहे हैं।

इस श्लोक से स्पष्ट है कि धर्मशास्त्रकारों ने समाज को कुपथ से बचाने के लिए वेद विहित और स्मृति विहित विधि तथा महापुरुषों के आचरण का अनुकरण करने का उपदेश दिया है। इसके साथ-साथ उन्होंने शब्द प्रमाण के अतिरिक्त

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

व्यक्ति की आत्मा को महत्त्व देते हुए अपने बुद्धिबल को भी काम में लाने की प्रेरणा दी है।

धर्मशास्त्रकारों ने मानव के व्यक्तिगत धर्म का विशद रुप से वर्णन किया है। आधुनिक युग में व्यक्तिगत धर्म को ही धर्म का उज्ज्वलतम रूप कहा जाता है। धर्म का यह विशुद्ध सांसारिक (Secular) रुप है। धर्म के इस रूप को मानव धर्म या विश्व धर्म भी कहते हैं। यह ऐसा धर्म है जो समस्त संसार के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है। मनुस्मृतिकार ने निम्नलिखित श्लोक में इस धर्म के दस लक्षणों का वर्णन किया है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं, शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्मलक्षणम् ॥

अर्थ—धर्म के दस लक्षण हैं १. धृति, धैर्य २. क्षमा, ३. दम, मन को वश में करना, ४. अस्तेय—चोरी का त्याग ५. शौच—पवित्रता ६. इन्द्रियों को वश में करना ७. बुद्धि, ८. विद्या, ९. सत्य, १०. क्रोध का त्याग।

ये दस सद्गुण ऐसे हैं जिनके धारण करने से मानव मात्र का कल्याण हो सकता है। यह मानव धर्म विश्व भर को एक रंग-मंच पर ला सकता है। यह धर्म विविध राष्ट्रों के नागरिकों का एक समान कल्याण कर सकता है। इस धर्म के प्रचार से संसार में हो रहे सांप्रदायिक वैमनस्य को दूर किया जा सकता है। यही धर्म मानव को सृष्टि के आदि से लेकर अब तक प्रेरणा देता चला आया है।

स्मृति साहित्य के अतिरिक्त, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में भी यत्र-तत्र इसी व्यक्तिगत धर्म का अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है। महर्षि दयानन्द ने आधुनिक युग में इसी धर्म का प्रचार किया है।

आजकल धर्म शब्द का प्रयोग मजहब अथवा संप्रदाय अर्थ में होने लगा है। परन्तु प्राचीन संस्कृत साहित्य में धर्म शब्द का प्रयोग संप्रदाय अर्थ में नहीं हुआ है। प्राचीन समय में संप्रदाय तो अनेक थे। संप्रदाय के लिए प्रायः मत शब्द का प्रयोग होता रहा है यथा बौद्ध मत, जैन मत, शाक्त मत, शैव मत, वैष्णव मत आदि।

अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में कहीं-कहीं धर्म शब्द का प्रयोग मज़हब अथवा मत अथवा संगठन-धर्म के लिए हुआ है। हिन्दू धर्म शब्द हिन्दुओं के संगठन का भी द्योतक है। इसी धर्म में मेरुतन्त्र में निम्नलिखित श्लोक आया है—

हिन्दू धर्म प्रलोप्तारो जायन्ते चक्रवर्तिनः।

हीनं च दूषयत्येव स हिन्दुरुच्यते प्रिये ॥

भारत के संविधान में देश को धर्मनिरपेक्ष घोषित किया गया है। "धर्म-निरपेक्ष" इस पद में धर्म शब्द मजहब, मत, संप्रदाय के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। कई धार्मिक संगठन अपने उत्सवों पर सर्वधर्म सम्मेलन का आयोजन करते हैं। वे भी धर्म शब्द का प्रयोग मजहब अर्थ में ही करते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रभु दर्शन का मार्ग

महात्मा प्रभु आश्रित जी

चित्त की एकाग्रता आवश्यक है।

परमेश्वर अथवा शिव की प्राप्ति अथवा उसके दर्शन भक्त को एकाग्र अवस्था में ही हो सकते हैं। निरोध अवस्था प्राप्त करने के लिए चित्त की एकाग्रता आवश्यक है। चित्त की एकाग्रता उन लोगों को नहीं हो सकती, जिनका चित्त सांसारिक विषय वासनाओं के दुर्भोग में लिप्त हुआ होता है बुरे मन वाले जो विषयों में नीच आनन्द लेते हैं उनके मनः संकल्प शिव नहीं होते। न अपना कल्याण करते हैं न दूसरों का कल्याण सोचते हैं। मन के संकल्पों को शिव संकल्प बनाने के लिए शिव के पूजन का संकल्प अथवा व्रत मन में धारण किया जाता है। घरों को और दुकानों को विषय वासना और व्यवहारों को छोड़ कर आत्म योग की तैयारी के लिये मन्दिरों में एक आश्रय अथवा सहारा शुद्ध पवित्र स्थान का अनाड़ी लोग लेते थे। जो लोग विद्याहीन योगी गुरु की देख रेख में अपना समय नहीं दे सकते थे और चञ्चल और विक्षिप्त चित्त के कारण शरीर के (अंगों स्थानों अथवा चक्रों) में जैसे भृकुटी, हृदय, नासिका के अग्रभाव आदि पर धारण नहीं जमा सकते थे। वह स्थूल प्रकृति के लोग किसी दिव्य महापुरुष की मूर्ति में मन को एकाग्र करने का ढँग सीखने जाते थे।

शिवरात्रि का लक्ष्य

शिवरात्रि की रात्रि को ही न जाते थे बल्कि यह रात्रि तो उनकी परीक्षा और उत्तीर्ण होने की होती थी वह इतना अभ्यास पहले से परिपक्व कर लेते थे कि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उनका मन अशुद्ध कार्यों से हट कर शिव संकल्प वाला बन गया होता था। और इस रात्रि को अपने मन की जाँच-पड़ताल संकल्प विकल्प से रहित होने की सब करते थे, जो पास हो गया उसके लिए कल्याणकारी रात्रि बन गई फिर वह योग में प्रवेश कर गया। परन्तु—

जो लक्ष्य से विपरीत हो गये। वास्तविक लक्ष्य को न समझ शिवजी की मूर्ति में शिवजी का पूजन करने लग गए। उसे ही शिवजी समझ लिया और यही समझ अथवा ज्ञान उनका मिथ्या ज्ञान भ्रान्ति का हो गया, जो उनको बहुत दूर ले गया।

भ्रान्ति फैलाने का कारण मिथ्या गाथायें

मिथ्या गाथाओं ने भी और भ्रान्ति अधिक फैलाई, धन्ना जाट का उदाहरण पेश किया जाता है लोगों में भावनायें उत्तेजित करने के लिए। एक ढाईया की कथा भी सुनाई जाती है और भी कई प्रकार की कथाएं सुनाई जाती हैं, कि लोगों का विश्वास दृढ़ हो और श्रद्धा बने। श्रद्धा तो जरूर बढ़ती देखी जाती है। परन्तु विश्वास किसी का नाममात्र भी दृढ़ नहीं हुआ। शताब्दियाँ बीत गयीं, यह तो कहना पड़ेगा कि पूजा करने वालों को ईश्वर की आवश्यकता ही नहीं या उनमें सच्ची चाह प्रभु दर्शन की नहीं या सचमुच पूजा की विधि और उपास्य देव सत्य नहीं। भला जो जानता हो कि अमुक से मेरे अमुक कार्य की सिद्धि होगी उसके बिना किसी दूसरे से नहीं हो सकती और वह किसी सिफारिश अथवा लाभ का भी मोहताज नहीं, जो उसे अपनावे वह तुरन्त अपना लेता है तो फिर क्यों देर लगावे। यदि जरूरत हो अथवा चाह हो तो, जिसके लिए चाह है वह समक्ष विद्यमान है तो फिर उसके मिलाप में विलम्ब क्या?

मूर्ति पूजा से भगवत् साक्षात् असम्भव है।

मनुष्य घण्टे नहीं अपितु कई-कई दिन ऐसे व्यर्थ जुए में, खेल तमाशे में, दूसरे कार्यों में ऐसे लगा देता है कि खाना पीना तक भूल जाता है, पुत्र परिवार को, कार्य व्यवहार को भूल जाता है तो यदि मूर्ति पूजा से भगवान् का दर्शन हो जाता होता तो फिर क्या कोई भी मनुष्य ऐसा न निकलता जो साक्षात् दर्शन कर लेता। हिन्दू जाति में बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वान् और तपस्वी धर्मात्मा, संसार को अपने पीछे लगाने वाले, अपनी बुद्धि से संसार को चकित कर देने वाले ब्राह्मण कुलोत्पन्न तिलक महाराज जैसे, पंडित मालवीय जैसे चोटी के विद्वान्, अंग्रेजी और संस्कृत शास्त्रों दोनों के ज्ञाता, त्याग मूर्ति गोस्वामी गणेश दत्त जो हिन्दू जाति के पक्के नेता थे, एक दिन भी इस काम के अर्पण न कर सकते थे। जिन्होंने स्वराज्य के लिए जीवन तक लगा दिया तो क्या वह स्वराज्य दिलवाना प्रभु देव की शक्ति से बाहर था? इसी की ही आराधना करके प्रभु से साक्षात् कर सकते थे परन्तु सच्चाई तो यह है कि सत्य ज्ञान के विरुद्ध कितना ही निश्चय से किसी काम को किया जावे वह असत्य ही सिद्ध होगा।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पूजा के अनुसार फल

मैं तो इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि उपासक कैसा ही क्यों न हो, परमात्मा दयालु और न्यायकारी है जो जिस चीज की पूजा करता है और जितनी करता है, प्रभु उसे उसी का ही गुण, कर्म और स्वभाव प्रदान करते हैं ।

जो जिस चेतन देव की पूजा करता है, माता की, पिता की, गुरु की, साधु-संत की अथवा परमेश्वर की ओर जिस भाव से जितनी पूजा करता है उतने बल से पूज्य देव के गुण, कर्म, स्वभाव उपासक के हृदय में प्रवेश कर जाते हैं। भाव से बल और ज्ञान से सफलता मिलती है और जो जड़ की पूजा जिस भाव से करता है उसी बल से उसके अन्दर जड़ता के गुण, कर्म, स्वभाव का प्रवेश करा देते हैं। जो अहर्निश केवल इसी जड़ की पूजा में लगे रहते हैं जड़ चाहे कोई भी वस्तु हो जिसकी भी सच्चे हृदय से लग्न और भाव से पूजा करते हैं वह कठोर स्वभाव अकर्मण्य (कर्म रहित) आलसी और हठी गुण के हो जाते हैं! उनमें चेतन गुण कोई भी नहीं आता।

उपरोक्त दन्त कथाओं का समाधान

जिनके उदाहरण दिये जाते हैं! क्या वह मिथ्या होंगे अथवा मन घड़न्त? यह एक प्रश्न पैदा हो सकता है। योग विद्या के अनुसार मैं इतना कह सकता हूँ कि जो सरल स्वभाव भोले-भाले जिनमें कोई बुराई का विषय करतूत नहीं, पूर्व जन्म के दृढ़ता स्थिर संकल्प (मुस्तकिल मिजाजी) के संस्कार उनमें पूर्व तपस्या के कारण होते हैं, वह निष्पाप सरल स्वभाव भक्त मूर्ति की पूजा में उस आराध्य देव में हठ करके अपनी सुद्ध बुध भूल जाता है। उसे योग निद्रा आ जाती है और उस योग निद्रा में जैसे साधारण निद्रा में स्वप्न देखा जाता है ऐसे योग निद्रा में दर्शन हो जाते हैं और जिस मनोरथ के लिए वह अराधना की जाती है उसे वैसा ही प्रतीत होता है जैसे धन्ना ने भोग के लिए सामग्री रक्खी और मूर्ति के देवता उसे खाते हुए प्रतीत हुए और उसको विश्वास हो गया कि वे इसी मूर्ति से प्रकट हुए हैं, इससे अधिक और कोई सच्चाई नहीं।

ऋषि दयानन्द का बोध

ऋषि दयानन्द महाराज के पूर्व संस्कार भक्ति के थे उनमें बालकपन से कथा सुनने स श्रद्धा जागृत हुई और व्रत किया। सब सो गए। उन्हें दर्शन की चाह थी और सच्ची चाह थी। जो घटना मूषक की दूसरे प्रकार की सामने आती तो उनकी बुद्धि में भ्रान्ति होती तो उसे ही वह शिवजी का रूप मान लेते कि शिवजी ने मूषक के रूप में आकर भोग लगाया, परन्तु उनकी बुद्धि में संशय उत्पन्न हो गया। यदि संशय ही रह जाता तो वह कोरे नास्तिक हो जाते, परन्तु उनमें संशय के साथ तर्क खड़ा हो गया। इस तर्क बुद्धि ने उन्हें संशय निवृत्ति के लिए साक्षात शिवजी के दर्शन के लिये वैराग्य उत्पन्न कर दिया और अनेक स्थानों पर वह श्रद्धा से फंसे परन्तु तर्क के द्वारा वह एक को छोड़कर दूसरे में लगे। योग और विद्या का अभ्यास करते-करते अन्त में वह पूर्ण श्रद्धा से सच्चे गुरु चरणों में जाकर सफल हुए।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अब एक मूल कारण

अब मैं ए.: मूल कारण बताता हूँ जो आप सब ध्यान से सुनें और पढ़ें कि संसार का मार्ग क्यों सफल नहीं होता ?

श्रद्धा

श्रद्धा आन्तरिक गुण है, भक्ति की नींव है। उसका कोई परिणाम और भार नहीं। साधारण लोगों में श्रद्धा तो है परन्तु वाह्यमुख वृत्ति के कारण वह नपी तुली (परिमित) होती है।

आध्यात्मिक सफलता के दो साधन

मानव की आध्यात्मिक सफलता के दो साधन हैं, श्रद्धा और विश्वास। श्रद्धा का स्थान है मन और विश्वास का है बुद्धि।

अनपढ़ जनता में विश्वास बुद्धि में होने की बजाय मन में स्थान ले लेता है तो अन्धविश्वास बन जाता है जिससे उनका मनोविज्ञान, मानसिक बल निर्बल हो जाता है और पठित लोगों में श्रद्धा बजाय मन के बुद्धि में स्थान ले लेती है। तब वह माप तोल की परिमित और भार वाली बन जाती है।

माप तोल की श्रद्धा को समझिए। सात्विक श्रद्धा तो एक रस रहती है। राजसिक और तामसिक श्रद्धा घटती बढ़ती रहती है। श्रद्धालु जिसमें श्रद्धा रखता है अथवा करता है तो किसी प्राप्ति के लिये करता है तो उस से मिलनी होती है। सात्विक श्रद्धालु तो केवल सत्य प्राप्ति के लिये करता है परन्तु राजसिक वृत्ति वाला यदि प्राप्त करने योग्य वस्तु के साथ-साथ अपनी मान आदर प्रतिष्ठा को भी पाता है तो जितना मान यश पाता है उतनी उसकी श्रद्धा बढ़ती जाती है। जब ही श्रद्धेय से उसको आदर कम मिला या उसे ताड़ना हुई या उसकी त्रुटि अथवा दोष की आलोचना हो गई तो तुरन्त श्रद्धा कम हो गई। आवागमन, सेवा सत्कार सब कम हो गये फिर जब मान की पूर्ति हुई तो फिर बढ़ने लग गई, ऐसे अपने मान को माप तोल से श्रद्धा बनती है।

तामसिक वृत्ति वाले किसी स्वार्थ सिद्धि के लिए धन, पुत्र अथवा दुःख रोग निवृत्ति के लिए श्रद्धा करते हैं। ज्यों-ज्यों पूरी होने लगी, त्यों-त्यों श्रद्धा बढ़ती गई, जब पूरी न हुई अथवा कमी हुई तो घटने लग गई, बिल्कुल आस न रही तो श्रद्धा भी समाप्त हो गई। यह कहलाती है नपी तुली श्रद्धा।

जिनकी श्रद्धा मन में न होकर बुद्धि में स्थान ले लेती है उन्हें यथार्थ ज्ञान और भक्ति प्राप्त नहीं होती। जिन लोगों का विश्वास बुद्धि में और श्रद्धा मन में स्थान रखती है वह अन्तर मुख होते हैं, वही आत्म विकास और प्रकाश को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।

उपासना का फल आशीर्वाद-प्रसाद

एक और गुर की बात भी गाँठ बाँध लीजिए। जो मनुष्य चेतन बुद्धि से जड़ की उपासना करता है, जड़ में आशीर्वाद देने की न शक्ति है न ज्ञान, तो भी पूजा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करने वाला वंचित रहा प्रसाद से और यदि उपासना तो करता है चेतन की परन्तु करता है जड़ बुद्धि से, तो चेतन देव में आशीर्वाद तो देने की शक्ति है परन्तु दे कैसे जब उसे ज्ञान है कि बुद्धि जड़ है तो जड़ को कैसे आशीर्वाद दे। दीवार पर कौन हाथ फेरता है शाबाश का ! चाहे वह कितनी सुदृढ़ व रूपवान क्यों न हो ? मृत बालक को कौन माँ-बाप चूमता है ?

कितना आश्चर्य है संसार में प्राणदाता तो परमेश्वर ही एक है, ऐसा कभी नहीं देखा न सुना गया कि परमेश्वर ने जिसे प्राण दिया हो फिर वह समाप्त ही न हुआ हो परन्तु एक मनुष्य जो स्वयं अपने लिए अपने पुत्र परिवार के लिए प्राण का भगवान् से भिखारी है वह एक जड़ मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा करके उसे भगवान् बना देवे और फिर वह प्राण कभी उस मूर्ति से समाप्त ही न होवे। आप तो मर भी जायेगा परन्तु क्या कमाल है कि उसका मूर्ति में डाला फूंका हुआ प्राण कभी समाप्त न हो ! यह है भ्रान्ति जिसने मनुष्य को वर्षों और जन्मों से पूजा करने पर भी सच्चे परमेश्वर से दूर-दूर रक्खा।

शिवरात्रि का दिन व्रत का सूचक है कोई न कोई व्रत हम सबको ले ही लेना चाहिए। ताकि आगामी वर्ष अपने जीवन को जान सके।

पूर्ण श्रद्धा

सत्य स्वरूप प्रभु या कोई भी सद्कार्य अथवा सद् व्यक्ति के प्राप्त करने या धारण करने या उसका ध्यान करने में जो सद्भावना हृदय में उपजती है या रहती है या हृदय से प्रकट होती है उसी का नाम श्रद्धा है। श्रद्धा एक देवी है। आकारात्मक देवी नहीं प्रत्युत गुणात्मक देवी है जो क्रियात्मक रूप धारण करने पर प्रकट होती है। अपना वास्तविक रूप दर्शाती है जैसे देव अथवा देवी का अर्थ देने वाली है। क्या-क्या देने वाली है ? सुख देने वाली, प्रकाश देने वाली, ज्ञान देने वाली, दान देने वाली, त्याग वृत्तिको जागृत करने वाली इत्यादि, बस यही श्रद्धा का रूप है।

श्रद्धा की अवस्थाएँ

मनुष्य मात्र के हृदय में श्रद्धा का अंकुर निहित है। समय और आवश्यकता आने पर श्रद्धा अपने रूप को प्रकट करती है। श्रद्धा की चार अवस्थायें देखी गई हैं। १. अति २. न्यून ३. पूर्ण और ४. समाप्ति। श्रद्धा अपने निजी रूप से तो सतोगुणी है सात्विक दिव्य गुण है, जो समस्त दिव्य गुणों की नींव है। इसके बिना एक पग भी उन्नति के मार्ग में नहीं चला जा सकता। मनुष्य की अपनी सात्विक, राजसिक और तामसिक वृत्तियों के कारण और समय, स्थिति, विचारों अथवा भावों के कारण से भी श्रद्धा अधिक वा न्यून हो जाती है। राजसिक और तामसिक व्यवसाय वालों में अहम् और स्वार्थ भी राजसिक और तामसिक होता है। उनकी श्रद्धा अहम् और स्वार्थ पूर्ति के कारण से होती है चाहे परमेश्वर में हो, चाहे किसी व्यक्ति में अथवा किसी सद्कार्य में हो। उनकी श्रद्धा अति या अधिक होती जाती है और काम पूर्ण होने में न्यून पूर्ण न होने या प्रतिकूल होने में समाप्त भी हो जाती है। अर्थात उसी अकुर या बीज में दब जाती है। और जो सात्विक श्रद्धा होती है वह पूर्ण होती है न

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

न्यून न अधिक, वह लोगों के देखने में तो अति दिखाई देती है। उसका नाप या मुकाबला तामसिक श्रद्धा वाले अपने विचारों की न्यूनता के साथ करते हैं।

यह भी ठीक है जैसे बीज अपने में तो पूर्ण है परन्तु जब उगने लगता है तो वह नित्य प्रति बढ़ता और फैलता ही दीखता है कभी डण्ठल की मोटाई से, कभी लम्बाई से, कभी शाखाओं के फैलाव से, और कभी पत्तों की वृद्धि से, कभी तो उसकी पूर्णता को निजी स्वरूप का उस समय ज्ञान होता है जब वह फल लाता है और उस फल में वही बीज रूप में छिपा होता है।

अथवा

सूर्य अपने स्वरूप से पूर्ण प्रकाशित है परन्तु समय के हिसाब से और हमारी दृष्टि में उसका प्रकाश, उदय काल में कितना कम होता है और फिर बढ़ता और फैलता हुआ दिखाई देता है ठीक ऐसा ही श्रद्धा का हाल है।

सात्विक श्रद्धा के लाभ

यह सात्विक श्रद्धा किसी और के लिए नहीं की जाती, किसी की सेवा के लिये नहीं की जाती, उससे चाहे लाखों को लाभ पहुँचता हो परन्तु श्रद्धालु को अपनी श्रद्धा के गुण धारण अथवा विकास, प्रगट अथवा क्रियात्मक रूप में लाने से केवल अपने अन्तःकरण की शुद्धि शक्ति और योग्यता के विकास के लिए होती है जो उस सत्य को धारण कर सके जिसके लिए श्रद्धा, भावना जागृत हुई है।

इस श्रद्धा को यों समझिये जैसे कि एक डाक्टर अपने Indoor रोगी की चिन्ताजनक अवस्था में अपने गृह परिवार को भी भुलाकर केवल उस रोगी के लिए अपनी सोच विचार में ध्यान रखता है। १. एक वकील अपने कार्यार्थी के लिए भारी अभियोग की तैयारी अपनी विजय की प्रसिद्धि के प्रभाव से तन्मय होकर करता है।

३. एक व्यापारी और धनी हुंडी के भरने में सावधान रहता है।

४. एक भिखारी भूखा किसी द्वार पर खड़ा भिक्षा मिलने की आशा में व्याकुलता से प्रतीक्षा करता है।

५. एक चोर अपनी दृष्टि, मन और कान को माल खजाना के पता लगाने में लगाता है।

६. बिल्ली चूहे की आवाज सुनने में अपने कान खड़े रखती है।

७. जैसे माता अपने बालक के उदर को सदा दृष्टि में रखती है ऐसे सात्विक श्रद्धालु को अपने श्रद्धेय वस्तु सद्कार्य, व्यक्ति अथवा परमेश्वर में बिना अन्य बातों का ध्यान किये केवल अपने ही अन्तः शुद्धि और शक्ति के लिए श्रद्धा रखता है।

श्रद्धा ही एकाग्रता को उत्पन्न करती है और पवित्रता का प्रकाश कराती है। प्रत्येक साधक को श्रद्धा उत्पन्न होने पर उसे क्रियात्मक रूप देते रहकर जाग्रत रखना चाहिए। जब श्रद्धा को क्रियात्मक रूप नहीं मिलता तो भय और लज्जा से दब जाती, संकुचित और निर्बल हो जाती है और कठोरता नास्तिकता से मर जाती है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सात्विक श्रद्धा जो क्रियावान् रहती है जितनी क्रियावान् होती जाती है ज्ञान के नये-नये अनुभवों की उपज बनती जाती है। "श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्" श्रद्धावान् ही ज्ञान को प्राप्त करता है और फिर अन्त में जब श्रद्धाव्रत रूप से त्याग वृत्ति को उत्पन्न करती है तो वह सत्य को प्राप्त कर लेती है।

"श्रद्धया सत्यमाप्यते"—यजु १९—३०

यह श्रद्धा आरम्भ में, मन में रुचि और प्रीति पैदा करती है, फिर आदर सत्कार को आचरण में परिणत करती है, आदर सत्कार से मेल-जोल और सत्पुरुषों को आकर्षित करने वाली हो जाती है और उनके संग से आंशिक-आंशिक कार्यों में रक्षा प्राप्त कराती है और अन्त में सत्य स्वरूप के समीप कर देती है।

—:०:—

आशा और श्रद्धा

इस लोक का व्यवहार तो आशा पर चल रहा है। निराशावादी तो कुछ भी नहीं कर सकते अथवा आशा भंग हो जाने पर मनुष्य का उत्साह क्षीण हो जाता है।

परलोक का व्यवहार सात्विक सब श्रद्धा पर निर्भर है, जितनी श्रद्धा का माप तोल कोई दूसरा करे तो भूल हो जाती है। इसका माप तोल है ही नहीं, जो है भी वह सब श्रद्धालु में पूरा-पूरा होता है। श्रद्धा की माप श्रद्धालु के अपने गज से करनी चाहिए जैसे—

१. दान और श्रद्धा का माप दानी की अपनी आर्थिक स्थिति पर निर्भर है। २. परोपकार में श्रद्धा का माप परोपकारी का अपना साहस है। ३. सेवा में श्रद्धा का माप सेवक का तप है। ४. भक्ति में भक्त की श्रद्धा का माप सत्य है। ५. बोल चाल में श्रद्धा का माप बोलने वाले का ज्ञान होता है।

बस इन सब परलोक सम्बन्धी कार्यों में जब मनुष्य अपनी १. स्थिति, २. साहस, ३. तप, ४. सत्य और ५. ज्ञान से काम करता है तो उसके पूर्व संस्कार उसके बाधित बन जाते हैं और जब अति करता है तो दिखावा अथवा स्पर्धा हो जाती है। दिखावे वाला अन्त में थक जाता और स्पर्धा वाला रोगी बन जाता है। यह उसके चिह्न हैं।

—:१०:—

मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत।
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत॥
ऋ० ८-१-१॥ सा० पू० ३-१-१॥
सा० उ०-६-१-५॥ अथर्व २०-८५-१॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शब्दार्थ—[अन्यत्] अन्य किसी के स्तोत्रों को [मा चित्] कभी मत [विशंसत] उच्चारण करो, और इस तरह [सखायः] हे सखाओ, मनुष्य भाइयो ! [मा रिषण्यत्] मत अपने को विनष्ट करो। [सुते] इस संसार यज्ञ में, प्रत्येक यज्ञ कर्म में [सचा] मिलकर, तन्मग्न होकर [वृषणं] अभीष्टों को बरसाने वाले, सर्व शक्तिमान् [इन्द्रं] परमेश्वर की [इत] ही [स्तोता] स्तुति [च] और [मुहुः] वारम्बार [उकथ्या] उसके ही भजनों का [शंसत] उच्चारण करो।

नोट—शिवरात्रि के दिन "प्रीतम तेरे कोल वसदा ढूंडन किथे जावना" इस शीर्षक से श्री महाराज जी का लिखित उपदेश पढ़ा गया, उससे कई सज्जनों को रोष तथा असन्तोष हुआ उनके रोष तथा असन्तोष का प्रतिकार अथवा समाधान इस लेख से होता है।

—सम्पादक

ध्यान पूर्वक पढ़िये—

आदरणीय महानुभावों तथा पूज्य माताओं !

मनुष्य जीवन का यही लक्ष्य है जो आपने [शब्दार्थ तथा उपरोक्त मन्त्र की विनय से] सुना। इस समय संसार भटका हुआ है। "प्रीतम तेरे कोल वसदा" शीर्षक के लेख में मैंने कहा था कि उपासना की विधि ससार में भ्रान्ति की विधि है असत्य विधि है। इस पर थोड़ा सा कई सज्जनों को रोष भी हुआ और असन्तोष भी हुआ। उनका दोष नहीं। मनुष्य अपने प्यारे की निन्दा नहीं सुन सकता उसे क्रोध आ जाता है। मुझे अपनी सन्तान प्यारी हो मेरी सन्तान का कोई गिला करे तो मुझे आवेश आ जाता है। यह लोग चिड़ क्यों जाते हैं ? सनातन-धर्म के विपरीत जरा कुछ बोलो उन्हें क्रोध आ जाता है वह सच्चे हैं वह सनातनधर्मी न भी हों तो भी उनको क्रोध आ जाता है क्योंकि उनको सनातन-धर्म से प्यार है। ऐसे मुसलमान को इस्लाम से और हजरत मुहम्मद से प्यार है। वह चाहे पाँच समय नमाज न पढ़ते हों, रोजें न रखते हों, पक्के मुसलमान न हों तो भी इस्लाम और हजरत मुहम्मद का गिला वह सुन नहीं सकते : झट लड़ने और हत्या करने पर उद्यत हो जाते हैं।

यही अवस्था सिखों की है। नाम का सिख हो धर्म से उसको स्पर्श भी न हो, कभी गुरुद्वारे गया भी न हो, ग्रंथ साहिब का पाठ भी न किया अथवा सुना हो परन्तु गुरु साहिब तथा ग्रन्थ साहिब के प्रतिकूल वह कुछ सुनने को तैयार नहीं। आर्यसमाजी भी इस स्थिति और स्वभाव से मुक्त नहीं हैं। ऋषि दयानन्द तथा वेदों की शान में वह कोई विपरीत बात सुनने को तैयार नहीं, आवेश में आकर अपना पक्ष सिद्ध करने पर उद्यत हैं। उस लेख में मैंने बतलाया था कि जो लोग चेतन बुद्धि से जड़ की उपासना करते हैं वह कभी सफल मनोरथ नहीं होते।

उपासना का फल

महर्षि दयानन्द ने उपासना का फल लिखा है, "आत्म बल"। शास्त्रकारों ने लिखा है, "दुःखों से दूरी, आनन्द और मुक्ति की प्राप्ति।" यह तीन फल लिखे।

सबसे पहली चीज जो उपासक को उपासना से मिलेगी वह है दुःखों से दूरी। दुःख होते हुए भी वह हाय-हाय नहीं करेगा। वह साधन उसके अन्दर प्रविष्ट हुआ परन्तु परमेश्वर साध्य उसके अन्दर नहीं आया। जैसे कोई यज्ञ कर रहा है। तप कर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रहा है। यज्ञ और तप उसके जीवन के अन्दर आ गये। एक तप है क्षुधा, पिपासा, शीतोष्ण को जीतना। अब जिसने यह तप किया, जितनी शीत पड़े उसको तंग नहीं करेगी। जब मनुष्य के अन्दर साधन प्रवेश कर जाता है उसका चिह्न है दुःखों से दूरी।

जब वह परमेश्वर के वाह्य स्वरूप अर्थात् विराट स्वरूप में प्रवेश करता है कोई वस्तु उसे दुःखदाई मालूम नहीं होती। मक्खी, मच्छर और सर्प भी आनन्द देने वाले प्रतीत होते हैं और अन्ततः उसको मुक्ति प्राप्त होगी।

हमारी उपासना यदि अभी दुःख में हाहाकार कराती है तो समझ लीजिए कि हमारी उपासना हमारे अन्दर प्रविष्ट नहीं हुई।

जड़ में शक्ति नहीं कि वह प्रसाद दे। प्रसाद का नाम है आशीर्वाद। परमेश्वर का आशीर्वाद प्रसाद रूप में मिलता है। आशीर्वाद एक लिफ्ट (Lift) है बटन दबाया और आकाश में चढ़ गया।

शब्द को अर्थ की भावना से जपे। जैसे योग शास्त्र में बतलाया, "तज्जपस्त-दर्थभावन"।

(यहाँ यज्ञ में दूसरी बार जो आहुति पड़ी, वह बिना मन्त्र के पड़ी—उसकी ओर संकेत करके भी महात्मा जी ने कहा) जैसे स्रुवे में घृत भरा, दूसरी बार सब अचेत थे। जो मन्त्र के बिना आहुति दी जाती है वह तमोगुणी हो जाती है। ऐसी आहुति अग्नि में तो सार्थक हो गई परन्तु हमारे लिए तमोगुणी हो गई।

शब्द, अर्थ, भावना का सम्बन्ध

शब्द शरीर है, अर्थ प्राण और भावना आत्मा है। प्राण रहता है पत्थर में भी, यदि शब्द का अर्थ आता है तो हम पर्वत के समान हैं। जप यज्ञ में हमारा शब्द रहता है जिह्वा पर, अर्थ रहता है मस्तिष्क में और भावना रहती है हृदय में, यदि हमने भाव से आहुति नहीं दी तो इसका नाम है जड़ता।

योगकार ने कहा अर्थ के साथ भाव आये। यदि 'ओ३म्' के जाप के साथ हमें उसका अर्थ 'रक्षक' आए न आए तो कोई लाभ नहीं है। अर्थ मस्तिष्क में चला जावे, भाव से करे तो ऋषि के अनुसार आत्म बल आ जायेगा।

सनातन धर्मी पूजा करते हैं चेतन बुद्धि से। वह भाव से कहते हैं परन्तु भ्रान्ति यह है कि जिसकी उपासना वह करते हैं वह उपास्य देव नहीं है अतः आशीर्वाद नहीं मिलती। और जो जड़ बुद्धि से चेतन की उपासना करते हैं तो भी आशीर्वाद नहीं मिलता।

निष्काम यज्ञ

जब कोई हमारा दोष बतावे तो हमें उसका धन्यवाद करना चाहिए। सकाम यज्ञ किया और फल सामने आया, इच्छा पूर्ति हो गई। परन्तु निष्काम कर्म कभी भी जड़ रूप से नहीं हो सकता है। निष्काम कर्म का फल है अन्तःकरण की शुद्धि। अतः यदि हमारा अन्तःकरण शुद्ध नहीं हुआ तो समझो कोई कामना अभी उसके अन्दर छिपी हुई है। यदि "सर्वे भवन्तु सुखिनः" कहते समय हमारे अन्दर यह भाव रहे तो हमारा कल्याण हो जावे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वकथा

१९०६ से यज्ञ करता हूं। कभी नहीं चूका (अनध्याय नहीं किया) यात्रा में था, चाहे गाड़ी में, किसी भी अवस्था में था और रहा—यज्ञ नित्य करता रहा। शैया पर पड़ा रोगी अवस्था में भी कुण्ड सामने रखकर यज्ञ किया। जब तक ज्ञान नहीं था तब तक कर्तव्य समझता था। जब मेरा यश होने लगा, मैंने समझा यह ऊँचा काम है। फिर मेरा क्या बनना था ? अब जब मैं यज्ञ करता हूँ, ऊँचाई मेरे सामने रहती है।

प्रभु मन में कब बसता है ?

यदि हमको आत्म-बल नहीं मिला तो उसकी पाँच निशानियां हैं। जो कर्म हम प्रभु को प्रसन्न करने के लिए करते हैं कि वह हमारा मित्र हो जायेगा। सच्ची सेवा तब हो सकती है जब वह हमारे मन में बसता हो। पिता के मन में पुत्र बसता है इसलिए वह सारी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी हो जाता है। सेवा करने से जब प्रसन्न हो जायेगा। तो सेव्य सेवक के मन में बस जायेगा। मैंने परमेश्वर की भक्ति की, सेवा की, मेरे मन में परमेश्वर बसता है। यदि बसता है तो मैं अनुभव करूँ। सेवा करता हूँ इसलिए तो परमेश्वर मन में बस जायेगा। परन्तु यदि नपी-तुली श्रद्धा से की तो बसना दूर रहा।

श्रद्धा तीन प्रकार की है

१. सात्विक श्रद्धा—एक रस रहने वाली जो न घटे न बढ़े। यदि हम दीपक जलाकर उसके आगे परदा रख दें तो प्रकाश नहीं फैलेगा—यदि आवरण हटा दें, प्रकाश सर्वत्र फैल जायेगा यदि दीपक जलाकर भूमि पर रख दिया तो प्रकाश थोड़ा होगा और यदि ऊँचा रखें तो और फैलेगा। आत्मा की ज्योति भी इसी प्रकार है। यदि आत्मा नीचे स्तर में है तो वह उस प्रकार रोशनी करेगी देह में, परन्तु जितना आत्मा का स्तर ऊँचा होता जायेगा, उतनी उसकी ज्योति फैलेगी।

महान् पुरुषों का संसार भर में उजियाला क्यों है ? इसका कारण है कि उनकी आत्म ज्योति ऊपर जगती है जैसे सूर्य की। हम लोगों की पृथ्वी पर है अतः वह पृथ्वी पर ही रहती है।

सात्विक श्रद्धा एक रस रहती है

२. अपने मान की खातिर—राजसिक श्रद्धा वह है कि मैं जितनी किसी की सेवा करता हूँ वह प्रसन्न होता है, आदर करता है। मेरा मान उसके साथ है। यदि वह प्रसन्न न हो मेरा आदर नहीं करता तो मेरी श्रद्धा कम हो जावेगी।

३. तामसिक श्रद्धा—जब एक व्यक्ति अपनी कामना मन में रखकर किसी सन्त की सेवा करता है, यदि उसकी कामना पूर्ण हो गई तो सेवा करता है, यदि कामना पूर्ण न हुई तो श्रद्धा न्यून हो जाती है अथवा हट जाती है। इस प्रकार की श्रद्धा तामसिक है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तोल और माप उसका होता है जिसका आकार है। श्रद्धा का कोई तोल माप नहीं। जो श्रद्धा और प्रेम रोम रोम के अन्दर रम जाये तो जो वस्तु आत्मा के अन्दर आयेगी, वह रोम रोम के अन्दर समा जायेगी।

आत्मिक बल की पाँच निशानियाँ

अब हम परमेश्वर के प्रति अपनी उपासना की श्रद्धा को समझें। यदि हमारी उपासना से हमारे अन्दर आत्मिक बल नहीं हुआ तो इस बात को दर्शाने वाले पाँच चिह्न हैं:—

१ जाग्रति

आर्द्र होना, उपासना उसकी सफल है जिसका हृदय तरल रहे। ज्ञान वह प्राप्त कर सकता है जिसकी बुद्धि सरल रहे। कर्म वह कर सकता है जिसका मन सरल रहे अर्थात् जिसके अन्दर कर्म करने की कुशलता है। जब जाग्रति होने लगती है तो हृदय आर्द्र हो जाता है। उसके हृदय में "सर्वे भवन्तु सुखिनः" की तरंगें उठती हैं और वही क्रिया में आ जाती हैं।

२ सत्य में प्रीति और सत्य का आदर

अभी हम सत्य में प्रीति और सत्य का आदर नहीं कर सकते, यह कठिन है। सत्य की परीक्षा आपत्ति में होती है। महात्मा गाँधी ने कितना काम किया, कई तो उसे स्थित यज्ञ कहते थे, कई मुस्लिम निवाज (अर्थात् मुसलमानों का पक्ष लेने वाला) कहते थे। स्वर्ण को स्वर्णकार कसौटी पर ही परखता है। परन्तु वह भी गलती कर जाता है।

सत्य तो प्रभु की अपनी वस्तु है अथवा अपनी आत्मा जान सकती है।

समय-समय की कसौटी पर सत्य को परखना चाहिए

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम जो अवतार रूप में समझे जाते हैं क्या उन्होंने पेड़ की ओट में छिप कर वाण नहीं मारा था? पर वह पाप नहीं समझा जाता। भगवान् कृष्ण ने क्या-क्या नहीं किया? सत्य को तोलना मापना काम और समय के अनुसार होता है। जो गृहस्थी अपने बच्चे को चूमता नहीं उसको कौन माता पिता कहेगा? यह चूमना पाप नहीं। हां यदि संन्यासी हो जाए और फिर चूमे तो संन्यासी नहीं कहलाएगा और यह चूमना पाप हो जायेगा। अतः सत्य को समय-समय की कसौटी पर परखना चाहिए।

छोटा सा दोष पर्वत समान

मनुष्य के अन्दर छोटा सा दोष छल कपट दम्भ आदि पर्वत समान प्रतीत हो। डाक्टर लोग रक्त की परीक्षा अणुवीक्षण यन्त्र से करते (MICROSCOPE) हैं तो एक छोटी सी बिन्दु भी महान् प्रतीत होती है, इसी प्रकार आत्म बल बढ़ रहा है अथवा कम हो गया है, इसकी पहचान इस प्रकार है कि मनुष्य के अन्दर ऐसा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अणुवीक्षण यन्त्र हो जाए कि वह अपने छोटे दोष को महान् और बड़े पुण्य कर्म को तुच्छ मात्र समझें।

स्वार्थ को विष समान समझ लिया तो वह स्पर्श नहीं करेगा। हम तो प्रतिदिन कहते हैं, "इदमग्नये इदन्नमम परन्तु हम जड़ बुद्धि से कहते हैं। इसलिए स्वार्थ की भावना हमारी नहीं हटती।

नम्रता आयेगी हृदय में, हृदय समझो, मन समझो, प्रगट होगी सिर झुकाने से, वाणी से मन को उलटा (नम) करना है। परमेश्वर के सामने हमारा मन नम्र हो जाए, तो अविरल प्रार्थना निकले।

अब अपने अन्दर झाँक कर देखें सत्य कहा कि नहीं। चेतन की उपासना जड़ बुद्धि से करने वाला अधिक पापी है। बनिस्वत जड़ की उपासना चेतन बुद्धि से करने वाले से। संशय में संस्कार ही पैदा न होंगे। भ्रान्ति वाला तो डट जायेगा चाहे वह लक्ष्य तक न पहुँचे। भ्रान्ति वाले को तो मनुष्य भी उठा देगा और संशय वाले को भगवान उठायगा और वह भी तब जब तरस (दया) आजाए।

परमेश्वर का मार्ग सुलभ है

परमेश्वर का मार्ग बड़ा सुलभ है। छोटी चीज की सब कुछ देखने के लिए, बड़ी भी देखलो और छोटी भी। ज्ञानेन्द्रियाँ छोटी ही तो हैं।

परमेश्वर तो बड़ा दयालु है। देखो उसने सूर्य बनाया जीवों के लिए ही पृथ्वी से जलकण अपनी ओर खींच कर शुद्ध करके फिर बरसादे पृथ्वी पर कि नाना प्रकार की उपज प्राणी मात्र के जीवन निर्वाह के लिए तैयार हो जाए। वर्षा हुई, फसल बोई, सूर्य, ताप और वायु संसर्ग से बढ़ी, पकी और फिर काटी गई—मनुष्य की उदर पूर्ति के लिए। यह चक्र दयालु पिता का ही चलाया हुआ है।

परम पिता परमात्मा ने हमारे लिए गौ आदि दूध देने वाले पशु पैदा किये। वह हमारा पिता है इसीलिए वेद ने कहा :—

'स नः पितेव सूनवे अग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये ॥ ऋ १-१-९।

अर्थ – हे ज्ञान स्वरूप परमेश्वर! जैसे पिता अपने पुत्र के लिये उत्तम ज्ञान का देने वाला है वैसे ही आप हम लोगों के लिये [सूपायनः] शोभन ज्ञान जो कि सब सुखों का साधक और उत्तम-उत्तम पदार्थों को प्राप्त कराने वाला है, उसके देने वाले होकर हम लोगों का सब सुख के लिये संयुक्त कीजिये।

सब मनुष्यों को उत्तम प्रयत्न और ईश्वर की प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिये कि हे भगवान्! जैसे पिता अपने पुत्रों को अच्छी प्रकार पालन करके और उत्तम-उत्तम शिक्षा देकर उनको शुभ गुण और श्रेष्ठ कर्म करने योग्य बना देता है वैसे ही आप हम लोगों को शुभ गुण और शुभ कर्मों से युक्त सदैव कीजिये—[ऋषि भाष्य—]

अतः परमेश्वर के साथ माता पिता जैसा अपना सम्बन्ध जोड़ लें तब तो वह सुलभ हो जाएगा।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हमारे अन्दर एक चीज नहीं बसी हुई। काम क्रोध आदि अनेकों चीजें बसी हैं जैसे पृथ्वी में पाँचों तत्व उसके अन्दर हैं अतः सब कुछ देती है। आकाश में कुछ नहीं। जल में अग्नि वायु और आकाश है, पृथ्वी नहीं, अग्नि में वायु आकाश है, वायु में आकाश है, आकाश में कुछ नहीं, इसलिये कुछ नहीं देता।

१९०६ में मैं पटवारी बनकर सुलतानपुर गया। वह सनातनियों का गढ़ था, उन्होंने समझा मैं आर्यसमाजी हूँ। एक लड़का शहर से मुखिया का १५ वर्ष का था वह बोला ऋषि दयानन्द के विरुद्ध, सब भय करने लगे कि पटवारी आर्यसमाजी है रुष्ट हो जायगा। मैं दयानतदार था, बोला ही नहीं, अब उसका पिता मेरे पास क्षमा माँगने आया मैंने लड़के को बुलाया और पूछा कि कुछ जानता है उसने कहा हिन्दी गुरुमुखी जानता हूँ, उर्दू नहीं जानता। मैंने लड़के को अलिफ़, पढ़ाना आरम्भ कर दिया। भजन बोलता था वह मेरा प्यारा बन गया। मैं उसका और वह मेरा बन गया-मैं बड़ा तर्क करता था परन्तु सहन करने से दूसरे को अपना बना लिया और उसके हृदय में बस गया। अन्दर बसाने का यही साधन है सहनशीलता।

मैं जब प्राणायामादि सीख कर विदा होने लगा तो गुरू ने कहा बेटा दो बातों का ख्याल करना :—

१. "जब तक फाँसी मजहब की तब तक होत न ज्ञान" अर्थात् यदि तूने समझा कि यह सनातनी है, जैनी है, यवन है इससे क्या लेना और दूर रहा तो ज्ञान की प्राप्ति नहीं होगी।

२. किसी भेषधारी फकीर साधु का निरादर न करना, लाल गुदड़ियों में मिलेगा। क्या जाने किसके पास क्या है ? शेख सादी ने भी कहा है :—

हर वेशा गुमां मबर कि खालिस्त।
शायद कि पलंग खुफता बाशद ॥

अर्थात् मत समझ कि हर झाड़ी खाली है, हो सकता है कि उसमें कोई सिंह चीता ही छिपा हो।

अतः यह ख्याल न करना कि यह सब ढ़ोंगी फकीर हैं। मैंने दोनों बातों को गाँठ बाँध लिया। जहाँ भी साधु भेष देखता हूँ, झुक जाता हूँ, खानपुर कन्या गुरुकुल आचार्य जी के साथ गया, वहाँ मुझे लाभ ही लाभ हुआ।

मखी तो हों जो रस को चूसे।
वे न हों, जो खून को चूसे।

इसी को आत्म जागृति कहते हैं।

जपना सुलभ है और परमेश्वर इन सबसे ज्यादा सुलभ है। कहाँ नहीं ? हाथ में आँख में सर्वत्र है। पहले से ही विद्यमान है। आवरण को उठाना है। वह आवरण है अहंकार के देने से ऐसा हो जायगा जैसे मैंने न खाया, दीन दु:खी को खिला दिया। मैं उसके अन्दर प्रविष्ट हो गया। जब अहंकार दे दिया, मैं समष्टि में प्रविष्ट हो गया जब अहंकार छूट जायेगा परमेश्वर सुलभ हो जाएगा।

प्रभु करें कि यह मर्म की बात हमें जँच जाय।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अनमोल मोती

अनखुट दान

मनुष्य का जीवन यज्ञमय है। वह सदा त्याग और दान करता है। दान वृत्ति से बुराइयों के त्याग की अवस्था प्राप्त होगी। इस त्याग से शुभ गुणों के ग्रहण की शक्ति आकर अंतःकरण शुद्ध हो जायेगा। अन्तःकरण की शुद्धि से प्रभु भक्ति में एकाग्र होकर आनन्द रस आयेगा। और अन्त में आत्म दर्शन होगा।

छः साधन

मनुष्य के पास दान के ६ साधन हैं। तन, मन, धन, अन्न, बल और ज्ञान। जिसके पास जो सामर्थ्य है वह उसका नित्य प्रति दान करता है, उस अपनी सामर्थ्य को शुद्धि निमित्त नम्र और कर्तव्य परायण होकर, न कि अहंकार भाव से दान करता है।

जिनके पास कुछ नहीं, वह २४ घण्टों में अपने तन से तथा खाली समय में घड़ी दो घड़ी अवश्य लोक सेवा करे। योगीजन मन से, विद्वान् ज्ञान से, वैश्य अन्न और धन से अनखुट दान करें। जिस दिन से वह दान आरम्भ करे, उससे पूर्व कुछ संग्रह कर ले। वह संग्रह किया हुआ किसी समय भी कम न होने पाये। जो रोजाना भाग निकालें उसमें से कुछ दें और कुछ संग्रहीत में मिला दिया करें। ऐसी प्रतिज्ञा कर लेवें कि बिना दान दिये अन्न न खावेंगे या विश्राम न करेंगे ! ऐसी वृत्ति दानी मनुष्य को मुख्य प्राण में प्रवेश करायेगी और उससे त्याग करने की शक्ति आवेगी।

मनुष्य का बड़ा कवच वाणी और हाथ है। चाहे मनुष्य इनसे नेक कर्म करे, चाहे बुरे, यही मनुष्य को छुड़ाने वाले और यही फंसाने वाले हैं। मनुष्य को स्वतन्त्रता प्राप्त कराने के यही साधन हैं। संसार के प्रेम भाजन बनो, या घृणास्पद। इसीलिए संध्या के अंग स्पर्श में वाक्-वाक् से आरम्भ हुई, और करतल कर पृष्ठ पर समाप्ति हुई।

अनखुट दान में पाँच प्रकार का दान अन्न और वाणी के आधीन हैं तन, अन्न, बल, धन और ज्ञान का दान। किसी को बांधना हो तो हाथ से बाँधेंगे। किसी का बन्धन काटना हो, छुड़ाना हो, तो हाथ से काम लेंगे मनुष्य के जीवन को स्याह सफेद (कृष्ण शुक्ल) बनाने वाले यही साधन हैं। इसलिए मानव ! इन दोनों को खूब मांज और चमका ! सत्य बोलना वाणी से और सत्य करना हाथ से। कथनी करनी सत्ययुक्त बना।

संध्या का दूसरा मंत्र अंग स्पर्श सचमुच है ही द्विजों के लिए। जितने स्थान स्पर्श के हैं वह सब ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के स्थान ही हैं। शूद्र तो नीचे दबा पड़ा है, आसन में। यश और बल पा ही द्विज सकते हैं। शूद्र किस चीज से यश और बल प्राप्त करे। हां पवित्रता का अधिकारी शूद्र भी है जो केवल तप से प्राप्त करता है, "तपः पुनातु पादयोः"।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बड़े जोरदार शब्दों में आदेश सा प्रतीत हुआ 'हाथ के दान की किसी दिन गैर-हाजरी न करो। तत्काल मेरा ख्याल प्रथम डा० चन्द्रभानु की ओर और फिर गणपति की तरफ गया। गणपति कैसे हाथ से धन का दान नित्यप्रति करे, जिसे महीनों आमदनी नहीं होती। मैं कह रहा हूँ कि गणपति ! कुछ भी न बन सके तो चुटकी भर आटा और खाँड शक्कर जो भी हो चिऊँटियों के बिल में डाल दिया करो। अधिक नहीं एक पैसा नकद किसी अर्थार्थी याजक पात्र को भेंट दे दिया करो, भावना अवश्य बनी रहे। किसी दिन हाथ के दान की गैर हाजरी अन्न, धन से न होने पावे। डाक्टर जी अपनी आय का अनुमान करलें, वरना एक रुपया दैनिक तो दान कर ही सकेंगे।

जब छोटा बड़े के आधीन होता है अर्थात् अपने अहंकार को अर्पण करता है, तब उसकी प्रेम भक्ति के प्रभाव से छोटे का मस्तक बड़े के चरणों में निहायत खुशी और प्रेम से झुक जाता है। दोनों की प्रसन्नता एक समान घुल मिल जाती है। जब बड़ा छोटे को अहंकार अर्पण करता है तो बड़ा छोटे के सिर को चूमता है, सिर पर हाथ फेरता है, यहाँ तक कि उसे कन्धे पर चढ़ा लेता है और जब बराबर वालों को अहंकार अर्पण होता है तो बड़े वेग से छाती से छाती, हृदय से हृदय को मिलाकर दोनों अत्यन्त प्रेम और प्रसन्नता को प्रगट करते हैं।

प्रभु का निवास कर्म के रूप में हृदय में होता है, ज्ञान के रूप में मस्तिष्क में और भक्ति (प्रेम) के रूप में सारे शरीर परन्तु निवास चरणों में होता है।

एक सन्त गद्दी पर बैठा है बहुत लोग बैठे हैं। एक तार्किक उठा, प्रश्न किया ! आपने प्रभु को साक्षात् कर लिया, देख लिया है ?

सन्त—तो क्या आप इन मनुष्यों के स्वरूपों को ठीक देख रहे हैं ?

तार्किक—हाँ, सबको ठीक-ठीक देख रहा हूँ।

सन्त—तो क्या आप अपने स्वरूप को भी देख रहे हैं ?

तार्किक—नहीं, हाँ मैं जान रहा हूँ कि मैं ऐसा हूँ परन्तु देख नहीं रहा।

सन्त—तो बस जब तक अपने को नहीं देखता, तो प्रभु को कैसे देख सकता है ?

तार्किक—तो क्या आपने अपने को और प्रभु को भी देख लिया है ?

सन्त—हाँ मैंने देख लिया है, अपने आपको और जान लिया है अपने आपको।

तार्किक—आपने क्या जाना और क्या देख लिया ?

सन्त—यही कि मैं कुछ नहीं हूं बिन्दु समान, तुच्छ अत्यन्त तुच्छ हूँ।

तार्किक—तो आप सबसे ऊँचे क्यों बिठाये गये ?

सन्त—यही शास्त्र मर्म की बात है, पवित्र ओं का स्वरूप भी शुद्ध नहीं होता अगर बिन्दु ऊपर न विराजे। देखो ! 'ओं' में अ+उ दोनों मिलकर भी अपने शुद्ध रूप में प्रगट न हो सके। जब तक तुच्छातितुच्छ बिन्दु को ऊपर नहीं बिठाया। प्यारे ! जब तक मनुष्य उस प्रभु के सामने अपने को तुच्छातितुच्छ नहीं मानता तब

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तक वह अपने को जानता हुआ भी कि मैं हूँ देख नहीं सकता। जब तक देखता नही तब तक उसे ऊँचा सिंहासन प्राप्त नहीं होता। अब जब अ+उ के साथ म अवाक् हो गया तो बिन्दु समान 'ओं' का साक्षात् है।

आँ राकि खबरशुद खबरश बाज नया यद

अर्थात् जिस मनुष्य को उस (परमेश्वर) का ज्ञान हो गया उसका अपना पता फिर न चला भाव यह है कि (परमेश्वर को साक्षात् करने वाला कहाँ और किस लोक में जाता है इसका पता नहीं लग सकता)।

श्रद्धालु जिज्ञासु—आपने इसे कैसे पाया, देखा, जाना ?

सन्त—मेरा मन अहंकार वृत्ति को लिए एक धनी के पास पहुँचा। बड़े-बड़े ऊँचे महल, अटारियाँ, गाड़ियाँ, नौकर-चाकर, शाही सामान देखे, मुकाबला किया और कहा इसके सामने मैं तुच्छ मात्र भी नहीं।

फिर किसी दानी के द्वार पर गया, जहाँ यात्रियों की पंक्तियाँ खड़ी थीं, अन्न जल, द्रव्य, वस्त्र बड़े जोर से बँट रहा था। लोग दुआएँ दे रहे थे, मेरे मन ने कहा मैं कुछ भी नहीं।

फिर ज्ञानी के पास पहुँचा, वहाँ बड़े-बड़े विद्वान् शास्त्र चर्चा कर रहे थे। उनकी बात समझने की भी योग्यता न पाई। मैंने कहा "ओ हो, यहाँ मैं शून्य से भी हेय (कम) हूँ जिसे गोल अंडा कहते हैं।

फिर एक गुफा में गया, कितने काल से ध्यानी समाधिस्थ हैं। पूछा तो पता लगा कि वर्षों से समाधिस्थ हैं, ऊपर घास जम गई है। मेरे मन ने कहा कि तू शून्य भी नहीं, यह तो तूने देखें मनुष्य, जो अभी देखने और सुनने में आते हैं। वह जो इन इन्द्रियों से परे न दीखे जाने वाला और न सुना जाने वाला है उसे सुनने और देखने की क्या शक्ति रखता है ?

बस प्यारे ! मेरा मन अहंकार रहित हो गया और कहने लगा "प्रभो ! अब तेरी शरण पड़ गया हूँ। मैं हार गया, तू जीत गया।" यह जो 'म्' प्रकृति माया की मैं थी, मैं पटकर शून्य चरणों में रह गई, अब प्रभु ने देखा और अब उस बेहिस बेजान बिन्दु को कहीं छोड़ूँ निराश्रय अपना आश्रित समझ दयालुता की उड़ान के प्रवाह द्वारा ऊपर उठा दिया। □

सत्य को जानने और समझने के लिए

अमर ग्रन्थ सत्यार्थ-प्रकाश पढ़ें

आत्म चिन्तन करें और पवित्र बनें—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एक और सस्ता प्रकाशन

संस्कार विधि :

बढ़िया कागज पर महर्षि का यह अनमोल ग्रंथ अब संस्थान ने प्रकाशित किया है।

मूल्य =२)५०। सजिल्द ४)
१५०) सैंकड़ा। २५०) सैंकड़ा

बड़ा साइज सजिल्द मूल्य ६)

नए महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

100 YEARS OF THE ARYA SAMAJ

बड़े साइज में—५½×९ इंच सर्वश्रेष्ठ आर्ट पेपर पर बहुत ही बढ़िया मुद्रित अंग्रेजी पढ़े लिखे व्यक्तियों में प्रचार के लिए अनुपम—पं० भारतेन्द्र नाथ लिखित यह ऐसा प्रकाशन है जैसा विदेशों में ही प्रचार हेतु छपता है— मूल्य ५०पैसे = ३५) सैंकड़ा

Universal Patriotism

स्वामी भूमानन्द सरस्वती द्वारा की गयो देश-भक्ति पूर्ण वेद मंत्रों की अनुपम व्याख्या, इस ग्रन्थ को पढ़कर आप मंत्रों का गूढ़ार्थ आसानी से समझ सकेंगे।

मूल्य केवल २)

ऋषि दयानन्द ने कहा था....

बढ़िया तिरंगा कवर मूल्य: १ रु० ४० पैसे, १००) सैंकड़ा

दयानन्द संस्थान नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेद ज्ञान का सूर्य उगा है फैल रहा वैदिक विज्ञान।
टिक न सकेगा आज विश्व में गुरुडमवादी मिथ्या ज्ञान।।

सत्यनारायण कथा समीक्षा

—कविराज पं० छाजूराम 'शान्त' आर्य महोपदेशक

सनातनधर्मियों (वर्तमान पौराणिक लोगों) के प्रत्येक व्रत, पर्व तथा कर्मकाण्ड आदि धार्मिक कृत्य पुराणों पर आधारित हैं। उनके समस्त क्रियाकलापों से अन्धविश्वास एवं रूढ़िवादिता प्रकट होती है। उन कृत्यों में एक सत्यनारायण की कथा भी है। जो स्कन्दपुराण में से लिखी हुई बताते हैं। यह कथा तो नहीं है और न इसमें व्रत का सही वेदोक्त विधान है। यह केवल माहात्म्य है कि अमुक व्यक्ति ने कथा सुनी तो उसे स्वर्ग वा मुक्ति मिली। अमुक ने न सुनी तो उसे नर्क वा कष्ट मिला। इस कथा को सुनते-सुनते सैंकड़ों वर्ष व्यतीत हो गये। किन्तु बुद्धि के अन्धे और गाँठ के पूरे किसी भी यजमान ने अपने पुरोहित से यह पूछने का आज तक साहस नहीं किया कि इसमें लिखित लीलावती, कलावती तथा अन्य वे व्यक्ति जो सत्यनारायण कथा सुन कर दुःखों से तर गये, धनवान् वा पुत्रवान् बन गये तो उन्होंने कौन सी कथा पुरोहित जी से सुनी थी! उसी कथा को आप हमें सुनाइये, ताकि हम भी दुःखों से तर जायें। यदि आपसे कोई कहे कि अमुक ग्राम के किसानों ने अपने परिश्रम तथा नये ढंग से १० वा १५ मन बीघे का अनाज उत्पन्न किया। तब यह सुन कर आप अवश्य ही यह पूछना चाहेंगे कि वही खेती का ढंग हमें भी बताइये। तब उसे बताना चाहिये। इसी प्रश्न का उत्तर कथा के विषय में पौराणिक कर्मकाण्डियों को बुद्धि संगत और सप्रमाण देना चाहिये। सो हमारे पूछने पर आज तक किसी भी पंडित ने सन्तोषप्रद उत्तर नहीं दिया और न वे दे सकते हैं। क्योंकि खोटा सिक्का कसौटी पर खरा उतरता ही नहीं है।

पाठक इससे यह न समझें कि हमें सत्यनारायण कथा से विरोध वा घृणा है। धर्म मार्ग पर चलने के लिये आज जनता में भगवतकथा की प्रथा अवश्य चालू रहनी चाहिये। हम स्वयं सत्यनारायण की कथा श्रद्धालु भक्तों को सुनाते हैं। विद्वानों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का कर्तव्य ही है कि जनता का पथ-प्रदर्शन करते रहें। परन्तु हमें दुःख है कि जिस कथा के श्रवण-मनन एवं आचरण से दुःखी जन तर जाते हैं, वह कथा पौराणिक पुरोहितों ने सुनाई ही नहीं। कारण, कि अल्पशिक्षित पुरोहित तो जानते नहीं और जो बड़े-बड़े संस्कृतज्ञ व्याकरणाचार्य पंडित हैं, जो वर्तमान कथा के मिथ्यात्व को भली-भाँति समझते हैं, वे स्वार्थवश इसी कथा को चालू रखना चाहते हैं। जनता में अपनी पूजा प्रतिष्ठा तथा धन का लालच उन्हें ऐसा करने के लिए बाध्य करता है साधारण पंडितों का तो फिर कहना ही क्या। उनके ऊपर 'अन्धेनैवनीयमानायथान्धाः' वाली उक्ति चरितार्थ हो रही है। एक अन्धा दूसरे अन्धे को क्या मार्ग बतायेगा!

वर्तमान चालू कथा कब से चली, किसने चलाई? वास्तविक सत्यनारायण कथा कौन सी है? इत्यादि सभी बातों का युक्तिपूर्वक उत्तर पढ़ कर आप विचार करें कि अवतारवाद की ओट में किस प्रकार शिकार खेला गया है और भोली प्रजा को कर्तव्यमार्ग से लाखों कोस दूर फेंक कर उसे गुमराह किया गया है। यह समस्त कथा ही काल्पनिक, असत्य पर आधारित तथा पैसा बटोरने का धन्धा मात्र है। जो पूर्व काल में वेद ज्ञान से शून्य किसी पौराणिक पण्डित ने भविष्य के विद्या-हीन ब्राह्मणों की उदरपूर्त्ति के लिए मनगढ़न्त लिखकर अपनी अज्ञता का परिचय दिया है।

अथ प्रथमोऽध्यायः

व्यास उवाच—**एकदा नैमिषारण्ये ऋषयः शौनकादयः।**
पप्रच्छुः मुनयः सर्वे सूतं पौराणिकं खलु॥

प्रसंग—व्यास जी ने कहा—एक समय नैमिषारण्य तीर्थ में शौनकादि ८८ हजार ऋषियों ने पुराणों के ज्ञाता सूत जी से पूछा :—

प्रश्न—कथा के प्रसंग में यह नहीं बताया कि व्यास जी ने किससे कहा? नैमिषारण्य तीर्थ कहाँ पर स्थित है? ८८ हजार ऋषि कौन थे, कहाँ से आये? सूतजी कौन थे? सूत जाति की उत्पत्ति एवं उसका व्यवसाय क्या है? इत्यादि बातों के बिना बताये कथा अधूरी मानी जाती है।[1]

प्रसंग—आगे चौथे श्लोक में कहा है कि नारद जी अनेक लोकों में घूमते हुये मर्त्यलोक में आये और यहाँ पाप से पीड़ित लोगों को देख कर उन्हें दया आई।

प्रश्न—पृथ्वी पर जहाँ तक मनुष्य बसे हैं वा बस सकते हैं, वह मर्त्यलोक कहलाता है। तब वे कौन-कौन से लोक वा देश थे, जहाँ-जहाँ घूमकर नारद जी इस मर्त्यलोक में आये? क्या वे लोक आकाश में स्थित हैं। क्या उससे पूर्व नारद जी

---

१. यह सब कुछ हम अपनी वेद कथा में श्रोताओं को बताते हैं। हमने इसी प्रसंग को लेकर अपनी कथा का आरम्भ किया है जिसमें भिन्न-भिन्न उदाहरण दिये जाते हैं। —लेखक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कभी मर्त्यलोक में नहीं आये ? क्या नारद जी के पंख लगे हुए थे वा हवाई जहाज से इतनी शीघ्र दूसरे स्थान पर पहुँच जाते थे ? इसका क्या समाधान है ?

वस्तुतः नारद जी तो ब्रह्मा के पुत्र योगी, तपस्वी और अध्यात्मज्ञानी थे। वे घूम-घूम कर लोगों को सत्यज्ञान का उपदेश देते थे। यही सन्तों का कार्य है।

छठे श्लोक में लिखा है कि संसार के दुःखी लोगों के दुःख दूर करने का उपाय पूछने के लिये नारद जी विष्णु लोक में गये।

समीक्षा—"विष्लृ व्याप्तौ" इस धातु से व्यापक अर्थ में श्नु प्रत्यय लगा कर 'विष्णु' शब्द निष्पन्न होता है। व्यापक परमात्मा का नाम विष्णु है। वह कण-कण में व्याप्त है। एक देशी नहीं है। तब नारद जी कौन से विष्णुलोक में गये ? यदि वह मनुष्यवत् है तो परमात्मा नहीं हो सकता। ब्रह्मा की तरह विष्णु भी एक ऋषि था। उसके पास नारद जी जा सकते हैं। हाँ, व्यापक अर्थ में यह घटता है कि नारद जी ध्यानावस्थित होकर बैठ गये और हृदय में स्थित परमात्मा से मनुष्यों के दुःखों का उपाय पूछा।

योगी लोग इस प्रकार परमात्मा से वार्तालाप कर लेते हैं।

श्लोक १० में विष्णु नारद से कहते हैं कि आप मेरे पास क्यों आये हो ?

समीक्षा—जब भगवान् सबके हृदय की बात पहले से ही जानते हैं, तो नारद से ऐसा क्यों पूछते हैं ? इससे स्पष्ट हो गया कि विष्णु एक मनुष्य ही था। जो कहीं एक ठिकाने रहता था और जिसे नारद के आने का कारण ज्ञात नहीं था। इसीलिये नारद से पूछना पड़ा।

श्लोक १४, १५ में विष्णु ने नारद को बताया कि सत्यनारायण के व्रत को विधिपूर्वक करके मनुष्य मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

समीक्षा—कथाकार का सम्बन्ध विष्णु नामक ऋषि से है, व्यापक परमात्मा से नहीं। क्योंकि, जहाँ व्रत का विधान लिखा है, वहाँ बताया गया है कि विष्णु भगवान् के लिये केले के फल, गेहूँ, चावल का आटा, मिष्टान्न आदि पदार्थ भेंट करना चाहिये। इन पदार्थों का भोक्ता साकार विष्णु हो सकता है। निराकार से कोई सम्बन्ध नहीं। परन्तु यहाँ साकार विष्णु भी नहीं है, जो उन पदार्थों को भोगे। हाँ, पोप जी के पेट में वे पदार्थ अवश्य जाते हैं। यदि शरीर धारी विष्णु ही परमात्मा होते तो वह नारद से यों कहते कि लोग मुझ परमात्मा के व्रत को करके दुःखों से तर जायेंगे।

दूसरी बात यह है कि इस कथा को स्कन्द पुराण से ली हुई बताते हैं। यह निश्चय है कि १८ पुराणों को बने एक सहस्र वर्ष से अधिक समय नहीं हुआ। तब प्रश्न होता है कि स्कन्दपुराण बनने से पूर्व सत्यनारायण कथा सुनने-सुनाने की प्रथा थी वा नहीं ? यदि थी तो कौन सी कथा सुनी जाती थी और सत्ययुग में जब सब लोग सुखी थे। कथा सुनी जाती है दुःख दूर करने के लिये। तब दुःख न होने से कौन सी कथा और किस प्रयोजन के लिये सुनी जाती थी ? साथ ही पौराणिक पुरोहित यह भी बतावें कि विष्णु ने नारद को प्रथम यह व्रत का विधान किस युग में सुनाया ?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

श्लोक २०, २१ में विष्णु ने व्रत के विधान में घृत, दुग्ध आदि पदार्थों से भगवान् का भोग लगाना कहा है।

समीक्षा—जब भोग पाने वाला चेतन कोई है ही नहीं तो भोग को खायेगा कौन ? मूर्ति तो जड़ है। जो कहो कि भगवान अदृश्य रूप से अवश्य खाते हैं तो भोग में से उतना कम हो जाना चाहिए। मूर्ति के माध्यम से पुरोहित आप ले जाते हैं। यदि मनुष्य की भाँति परमात्मा को भी अन्न वस्त्रादि की आवश्यकता है तो मनुष्य और परमात्मा में क्या अन्तर रहा ? जब कि परमात्मा क्षुधा-तृषा आदि से रहित अशरीरी है।

इसी व्रत के विधान में आगे विष्णु ने यह भी बताया है कि सायं समय सत्यनारायण का व्रत पूजन करे। यजमान रात्रि जागरण करता हुआ नाचे-गावे, कीर्तन करे।

समीक्षा—स्वास्थ्य की दृष्टि से आयुर्वेद का नियम है कि मनुष्य को समय पर ही खाना-पीना, सोना-जागना तथा अन्य कार्य करने चाहिये। अन्यथा हानि पहुँचती है। रात्रि को अधिक जागना और फिर नाचना-गाना प्रकृति नियम के विरुद्ध है। यदि इसे सत्य मानते हो तो आजकल इस पर सर्वत्र आचरण क्यों नहीं किया जाता ? रही कीर्तन की बात—सो भगवत् कथा के अन्दर ही भगवान् के गुण कर्मों का बखान हो जाता है। उस की कीर्ति गा दी तो कीर्तन हो गया। आजकल जो हरे रामा हरे कृष्णा का ऊँचे स्वर से कीर्तन किया जाता है, वह कोरा पाखण्ड और समय को नष्ट करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। न इसमें राम की कीर्ति की चर्चा है और न राम ने अपने को ही कहीं परमात्मा घोषित किया। सारी रामायण देख जाइये। तुलसी रामायण में—

कौशलेश दशरथ के जाये। हम पितु वचन मान वन आये।।

इससे उनका मनुष्य होना स्वतः सिद्ध है[1]। राम-लक्ष्मण सीता आदि सभी प्रातः सायं सन्ध्योपासना किया करते थे।

अध्याय के अन्त में लिखा है कि विशेषकर कलियुग में दुःख दूर करने का यह कथा सुनना छोटा सा सरल उपाय है।

प्रथम तो इसमें वर्णित घटनायें ही अस्वाभाविक हैं। यदि कुछ क्षणों के लिये सत्य भी मान लें तो भी निश्चय हो गया कि ये कथा के माहात्म्य कलियुग के आदि की घटनायें मात्र हैं। जो आगे चलकर स्कन्द पुराण में जोड़ दी गई हैं। अन्य युगों में इसका नाम भी न था।

॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥

---

१. आत्मानं मानुषं मन्ये (वाल्मीकि रामायण)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अथ द्वितीयोऽध्यायः

प्रसंग—**कश्चित् काशीपुरे रम्ये ह्यासीद्विप्रोऽतिनिर्धनः ।
क्षुत्तृड्भ्यां व्याकुलो भूत्वा नित्यं बभ्राम भूतले ।।**

काशीपुरी नगरी में शतानन्द नाम का कोई अत्यन्त निर्धन ब्राह्मण दुःखी होकर भिक्षावृत्ति से भूखा-प्यासा यत्र-तत्र भटकता था। तब ब्राह्मणों के प्यारे भगवान् को उसकी यह दशा देखकर बड़ी दया आई। वे बूढे ब्राह्मण के वेष में आकर उससे पूछने लगे—हे ब्राह्मण ! तुम इतने दुःखी होकर इधर-उधर क्यों घूमते हो। इसका कारण बताओ।

समीक्षा—अपने-अपने कर्तव्य का पालन करने वाले तो ब्राह्मण ही क्या, क्षत्रिय आदि सभी भगवान् के प्यारे हैं। यहाँ ब्राह्मणों के प्यारे क्यों लिखा ? यह तो भगवान् पर पक्षपात का दोष आता है। जो ऐसा पक्षपाती है, वह भगवान् नहीं हो सकता, मनुष्य ही था। ये वचन उसी पोप ने लिख मारे हैं, जिसने यह कथा गढ़ी है। क्या विद्वान् ब्राह्मण का काम भिक्षा मांगना है ? यह तो आलसी, मूर्ख और निकम्मे लोगों का काम है। जो देश के लिये भार स्वरूप होकर भटकते फिरते हैं। दूसरी साफ बात तो यही है कि परमात्मा कभी मनुष्य नहीं बन सकता। क्योंकि—स पर्यगाच्छुक्रमकायमित्यादि वेद मन्त्रों से सिद्ध है कि वह निराकार, अजन्मा, सच्चिदानन्द आदि गुणों वाला है। ये गुण मनुष्य में नहीं घटते। कहाँ परमात्मा और कहाँ मनुष्य ? क्या एम. ए. पास व्यक्ति कक्षा १ में आना पसन्द करेगा ? यह तो अवतारवाद की ओट में पेटपालों का रचित षड्यन्त्र है। जिसमें भोली जनता को फँसा रखा है।

आगे लिखा है कि उस व्रत के प्रभाव से वह निर्धन ब्राह्मण धनवान् बन गया और हर महीने वह व्रत करने लगा। अन्त: में उसकी मुक्ति हो गई, इत्यादि।

समीक्षा—सारा संसार जर-जमीन-जोरू इन तीन वस्तुओं के आकर्षण में सदैव से रहा है और आगे भी रहेगा। इसलिये यहाँ पोपजी ने कथा के माध्यम से लोगों को सम्पत्ति का लोभ दिया है। क्यों कि, वह जानता था कि जिस काम के करने से कोई लाभ न हो, उसे कोई नहीं करना चाहता। और इस दृष्टान्त के प्रभाव से धन के इच्छुक यजमान व्रत कथा करावेंगे तो हमें उत्तम-उत्तम भोगों तथा धन की प्राप्ति होगी, जिससे हमारी जीविका चला करेगी। इनसे पूछना चाहिए कि कथा सुनने का धनी पुत्रवान बनने से क्या सम्बन्ध है ? कथा सुनने मात्र का यदि यह लाभ हो तो पोप जी धनवान् क्यों नहीं बन जाते ?

इति द्वितीयोऽध्यायः

अथ तृतीयोऽध्यायः

इस अध्याय में उल्कामुख राजा का अपनी पत्नी के साथ भद्रशीला नदी के किनारे कथा सुनना लिखा है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यह भद्रशीला नदी कहाँ थी ? आजकल भी है वा समाप्त हो गई ? भारत के नक्शे में देखकर बताइये। उल्कामुख राजा किस वंश में उत्पन्न होकर कहाँ राज्य करता था। उसका भी परिचय देना चाहिये।

आगे साधु नाम का व्यापारी वैश्य आकर राजा से पूछता है कि इस कथा के सुनने का क्या फल है ? तब राजा ने बताया कि इस व्रत से सन्तान की इच्छा पूरी होती है। वैश्य भी निःसन्तान था। निदान उसने भी राजा से व्रत की विधि पूछ कर इसका निश्चय किया।

समीक्षा—इस प्रसंग में यह नहीं लिखा कि व्रत के प्रभाव से राजा के सन्तान हुई वा नहीं ? वस्तुतः सन्तान न होने का कारण राजा वा रानी को कोई गुप्त रोग होगा, जिसकी चिकित्सा उसने कराई होगी। दशरथ की भाँति पुत्रेष्टि यज्ञ किया होगा। केवल कथा सुनने से न कोई रोग जाता और न सन्तान होती है। वह तो आयुर्वेद के नियमानुसार वैज्ञानिक ढंग से ही हो सकती है। ऐसी दशा में आयुर्वेद की कथा सुननी चाहिये।

अधिकांश धनी व्यक्ति संतानहीन देखे जाते हैं। इसलिये कथाकार ने निःसन्तानों को सन्तान का लोभ दिखाकर कथा का माहात्म्य बताया है। यदि किसी ऐसे व्यक्ति की संयोग से इच्छापूर्ण हो भी जाती है तो पोप जी उसे कथा का प्रभाव बताकर उससे काफी धन प्राप्त करते हैं। कितने ही व्यक्ति कथा सुनते-सुनते मर गये। वे तो धन-सन्तान से वंचित ही रह गये।

उल्कामुख राजा की बताई विधि साधु वैश्य ने अपनी पत्नी को बताई और संकल्प किया कि सन्तान होने पर मैं भी व्रत कथा करूँगा। तब संकल्प मात्र से दस मास पश्चात् उसके घर एक कन्या का जन्म हुआ। वह कन्या चन्द्रमा की कला की तरह बढ़ने लगी। इसलिये उसका कलावती नाम रक्खा गया।

समीक्षा—इस प्रसंग से यह सिद्ध हुआ कि पूर्वकाल में आधुनिक फलित ज्योतिष के अनुसार नक्षत्रों के आधार पर नाम नहीं रक्खे जाते थे। केवल सुन्दर और सार्थक नाम रक्खे जाते थे। क्योंकि, कलावती का (क) अक्षर मृगशिरा नक्षत्र (वे वो क कि) का तृतीय अक्षर है। सो इसके आधार पर नाम नहीं रक्खा अपितु चन्द्र कला की भाँति बढ़ने के कारण ऐसा नाम रक्खा गया। वाल्मीकि रामायण से भी पता चलता है कि राम आदि चारों भाइयों के नाम भी नक्षत्र के आधार पर नहीं रक्खे गये। जैसे—

नक्षत्रेऽदिति दैवत्ये स्वोच्च संस्थेषु पञ्चसु।
गृहेषु कर्कटे लग्ने वाक्यता विन्दुना सह॥
कौशल्या जनयद्रामं दिव्यलक्षणसंयुतम्॥

पुनर्वसु नक्षत्र में जब कि पाँच ग्रह सूर्य, मंगल, बृहस्पति, शुक्र और शनि अपने उच्च स्थान में स्थित थे, उस समय चन्द्रमा के साथ बृहस्पति के उदय होने पर कर्क लग्न में कौशल्या के गर्भ से राम उत्पन्न हुए।

पुष्ये जातस्तु भरतो मीनलग्ने प्रसन्नधीः।
सार्पे जातौ च सौमित्री कुलीरेऽभ्युदिते रवौ॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भरत जी का जन्म पुष्य नक्षत्र में और मनि लग्न में हुआ। अश्लेषा नक्षत्र और कर्क लग्न में सूर्योदय होने पर लक्ष्मण और शत्रुघन का जन्म हुआ।

यहाँ विचारणीय है कि राम नाम का (र) अक्षर (पे पो र रि) चित्रा नक्षत्र का तृतीय चरण है। परन्तु, जन्म नक्षत्र (के को ह हि) पुनर्वसु इसमें (र) अक्षर का पता नहीं है। भरत का जन्म नक्षत्र पुष्य है, जिस के (हु हे हो हे) इन चरणों में (भ) अक्षर नहीं आया अपितु (ये यो भ मि) इस मूल नक्षत्र के चरणों में आता है।

इसी प्रकार लक्ष्मण और शत्रुघ्न आश्लेषा नक्षत्र में उत्पन्न हुए। जिसके (डि डु डे डो) इन चरणों में इनके नाम का कोई अक्षर नहीं आता। अपितु अश्विनी (चु चे चो ल) तथा (गो स सि सु) शतभिषा इन नक्षत्रों में आता है। सो इनमें उनका जन्म नहीं हुआ।

अब श्री कृष्ण का नाम भी देखिये—भाद्रपद वदि ८ अष्टमी को रोहिणी नक्षत्र में उनका जन्म कंस की जेल मथुरा में हुआ। रोहिणी नक्षत्र के (ओ व वि वु) ये चरण हैं। इनमें श्री कृष्ण का (क) अक्षर नहीं आता, वह मृगशिरा नक्षत्र के (वे वो क कि) इन चरणों में आता है।

तब यह स्पष्ट हुआ कि नक्षत्रों के आधार पर नाम रखने की आधुनिक प्रणाली कल्पित एवं अवैदिक है। वस्तुतः पूर्वकाल में विचार कर सार्थक नाम रखते थे और तदनुकूल गुण कर्मों में ही बालक को ढालने का प्रयत्न करते थे।

पुनः आगे श्लोक १८-१९ का लेख है कि वैश्य साधु ने अपनी कलावती कन्या के वर खोजने के लिये एक दूत को कांचन नगर में भेजा और वह दूत किसी वैश्य के गुणवान् सुन्दर पुत्र को पकड़ कर ले आया। वैश्य ने उसी के साथ अपनी कन्या का विवाह विधि विधान से कर दिया।

समीक्षा—इस प्रसंग में कथाकार को साधु वैश्य तथा कांचन नगर का पूर्ण परिचय देना चाहिये था कि यह नगर कहां पर स्थित है! और विवाह करने का यह कौन सा ढंग है कि लड़के को पकड़ कर लड़की के घर दिखाने को लाया जाय? पूर्व काल में तो लड़कियाँ गुण कर्मानुसार स्वयं वर का चुनाव करती थीं। जैसे सावित्री ने सत्यवान् को, दमयन्ती ने नल को, संयोगिता ने पृथ्वीराज चुना को तथा रुक्मणी ने शिशुपाल को अयोग्य समझ कर श्रीकृष्ण को अपना वर चुना था। इत्यादि अनेक प्रमाण हैं। यदि लोकरीति भी देखी जाय तो भी यह रीति गलत है। लड़की के माता-पिता आदि अभिभावक जन ही अपनी कन्याओं के लिये योग्य वर चुनते हैं। पुनः पसन्द आने पर नियत तिथि में विवाह कर देते हैं। विदित होता है कि कथाकार ने भंग के नशे में ऐसा लिख मारा है।

इसी साधु वैश्य ने पूर्व प्रतिज्ञा की थी कि मेरे कोई सन्तान हो जायगी तो मैं सत्यनारायण का व्रत करूंगा। परन्तु दुर्भाग्य से न तो सन्तान होने पर व्रत किया और न पुत्री के विवाह के अवसर पर किया और अपने दामाद को साथ लेकर साधु वैश्य व्यापार करने समुद्र के किनारे रत्नसारपुर नाम के नगर में पहुँच गया। तब इस भ्रष्ट प्रतिज्ञा वाले साधु वैश्य से सत्यनारायण भगवान् अत्यन्त रुष्ट हो गये।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समीक्षा—समुद्र के किनारे बम्बई, मद्रास आदि नगर तो बसे हैं, परन्तु यह रतनसारपुर नगर कहाँ पर स्थित है ? इसका स्पष्टीकरण होना चाहिए। शास्त्रों में क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः, यह लक्षण ईश्वर का लिखा है। अर्थात् अविद्या अस्मिता आदि पंचक्लेश, उनसे उत्पन्न कष्ट, कर्मफल भोग, ईर्षा-द्वेष, क्षुधा-तृषा, हर्ष शोक तथा क्रोधादि विकारों से रहित पुरुष को ईश्वर कहते हैं। वही ब्रह्मा आदि अनेकों नामों वाला है। तब यह कैसे हो सकता है कि भगवान् व्रत कथा न करने से रुष्ट हो गये ? यदि रुष्ट हो गया तो वह परमात्मा न था, कोई मनुष्य था। क्योंकि मनुष्य को ही क्रोधादि विकार सताते हैं। ऐसे भगवान् से तो दूर ही रहना चाहिये जो क्षण में रुष्ट और क्षण में प्रसन्न हो जाय। वह तो बड़ा खतरनाक भगवान् है। जिसको भूख-प्यास, निद्रा, थकावट क्रोधादि सताते हैं और जो स्वयं बन्धन में है वह अपने भक्तों को दु:खों से मुक्त कैसे कर सकता है। बुझा हुआ दीपक दूसरे दीपकों को प्रकाशित नहीं कर सकता।

जो व्यक्ति राज्य के कानून को भंग करता है, उसे राजा दण्ड तो देता है। परन्तु, कानून का पालन करने वालों को वह पारितोषिक नहीं देता। यही बात भगवान् की कथा के विषय में समझनी चाहिये। भगवान् की वेदवाणी ही उसकी कथा है। सभी मनुष्यों को चाहिए कि स्वयं पढ़ कर अथवा विद्वानों से सुनकर उन वेद के नियमों पर चल कर अपना जीवन बनायें। प्रथम ज्ञान पीछे कर्म यह नियम है। बिना ज्ञान के कर्म निष्फल है। वेद भगवान् का उपदेश एवं सृष्टि के लिये विधान है। उस पर न चलने से भगवान् दंड देगा, जो दु:ख का कारण है। चलने पर निश्चित सुख मिलेगा। केवल ज्ञान को आचरण में लाने से मुक्ति मिलती है, सुनने मात्र से नहीं। दवा को गले में लटकाने से वा दया का नाम सुनने से रोग दूर नहीं हो सकता, जब तक कि उसे सेवन न करें।

आगे श्लोक २५ में लिखा है—

भ्रष्टप्रतिज्ञामालोक्य शापं तस्मै प्रदत्तवान्।
दारुणं कठिनं चास्य महद्‌दुःखं भविष्यति॥

जब भगवान् वैश्य से रुष्ट हो गये तो उस वैश्य के लिए श्राप दिया कि इस को बहुत दु:ख प्राप्त होगा। फलतः रतनसारपुर के राजा चन्द्रकेतु के यहाँ मिथ्या चोरी के आरोप में जेल गये और राजा ने उनका सारा धन भी चोरी का समझ कर छीन लिया।

समीक्षा—यह तो सत्य है कि मनुष्य को अपनी की हुई प्रतिज्ञा पूरी करनी चाहिए। किन्तु यदि वैश्य ने ऐसा नहीं किया तो उसी को जेल में जाना था, दामाद को नहीं, क्योंकि वह निरपराधी था। हाँ, यह ठीक है कि कई बार बुरों के साथ अच्छे व्यक्ति भी फँस जाते हैं। ऐसी दशा में भगवान् आकाशवाणी से वैश्य को सन्देश दे देते कि यदि तू मेरा व्रत नहीं करेगा तो बड़ा कष्ट भोगेगा। तब वैश्य जेल रूपी संकट से बच जाता।

क्या परमात्मा अपनी प्रशंसा कराने वा खुशामद का भूखा रहता है। जो एक वैश्य के पीछे हाथ धोकर पड़ गया ? प्रतिज्ञाभ्रष्ट तो आज भी लाखों व्यक्ति होंगे, उनके पीछे भगवान् अब क्यों नहीं पड़ता ? देखिये—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वस्तुतः सत्यनारायण-कथाकार बड़ा चालाक और अवसरवादी व्यक्ति था। उसने भोले लोगों को ठगने के लिए यह कथा उपन्यास की भांति मन गढ़न्त रच दी है। उसने सोचा था कि संसार में धन सन्तान के इच्छुक व्यक्ति ही अधिक हैं। इस कारण कथा में इनका प्रलोभन दिया है। अनेक प्रकार के भय तथा आपत्तियाँ दिखाई हैं। क्योंकि, जो यजमान कर्तव्य समझकर व्रत कथा न करायेगा तो लोभ वा भय से तो अवश्य करायेगा। ये ही दो कारण ऐसे हैं जिससे मनुष्य अपने धर्म से पतित हो जाते हैं। जिन्हें धर्म सम्बन्धी ज्ञान है, ईश्वर के न्याय पर अटल विश्वास है और कर्मफल के कायल हैं, वे कदापि पथभ्रष्ट नहीं होते।

अन्त के श्लोक ४० के लेख में यह है कि एक दिन राजा चन्द्रकेतु को भगवान् ने स्वप्न दिया कि प्रातःकाल ही इन दोनों वैश्यों को छोड़कर इनका छीना हुआ धन वापिस कर देना, अन्यथा तेरा राज्य धन पुत्रादि सहित सब नष्ट कर दूँगा।

समीक्षा—महाभारत में लिखा है कि राजा जरासन्ध ने अपने बल के अभिमान में आकर ८४ अन्य माण्डलिक राजाओं को अपने अधीन करके जेल में डाल रखा था। उसका विचार था कि पूरे सौ राजा इकट्ठे हो जाने पर इनकी बलि चढ़ाऊँगा। क्या वे सभी राजा अपराधी थे? जरासन्ध का चन्द्रकेतु राजा की तरह स्वप्न क्यों न दिया? बल्कि पौराणिक लोग जो श्रीकृष्ण को अज्ञानतावश परमात्मा समझते हैं, वे कृष्ण स्वयं भीम और अर्जुन को साथ लेकर वहाँ स्नातक वेश में गये और जरासन्ध का वध किया। यही बात यहाँ भी होनी चाहिए थी, सो नहीं हुई।

इस प्रकार की अनेकों घटनायें इतिहास में वर्णित हैं। आज के युग में क्या कुछ अपराध नहीं हो रहे? जिनके निवारण के लिए भगवान् ने अभी तक कोई प्रोग्राम नहीं बनाया?

तृतीयोऽध्यायः समाप्तः

अथ चतुर्थोऽध्यायः

अब जेल से छूटकर साधु वैश्य ब्राह्मणों को धन का दान करके अपने दामाद के सहित नाव में सामान लादकर अपने नगर को चलने लगा। त्यों ही सत्यनारायण भगवान् ने दण्डी साधु के वेष में आकर परीक्षा के तौर पर वैश्य से पूछा कि हे साधो! बता तेरी नाव में क्या सामान है? वैश्य ने झूठ बोलकर लता पत्रादि बता दिया और कहा कि जाओ तुम्हारे लिए देने को हमारे पास रुपया पैसा नहीं है दण्डी भगवान् ने श्राप दे दिया तो वैश्य की नाव में लता पत्रादि ही रह गये। धन आदि सब सामान लुप्त हो गया। पुनः वैश्य पछताता है और दण्डी की शरण में जाकर खुशामद करता है तो उसकी नाव पूर्ववत सामान से भर जाती है। भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं।

समीक्षा—यहाँ भी कथाकार ने ब्राह्मणों का ही पक्ष लिया है कि ब्राह्मणों को धन का दान दिया। परन्तु यह नहीं लिखा कि भूखे और निर्धनों को भोजन व धन का दान दिया। निर्धनों में ब्राह्मणादि सभी आ जाते हैं। किन्तु, उसे तो यही अभीष्ट

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

था कि सेठ लोग अन्यों को दान न देकर ब्राह्मणों को ही दिया करें। जिससे बिना परिश्रम के हमारी उदरपूर्ति होती रहे। कथाकार का यह लेख अभी तक काम दे रहा है। धनपति ब्राह्मणों को ही दान देने में पुण्य समझते हैं। चाहे भले ही वे ब्राह्मण विद्याहीन, शराबी, भंगड़ी, तम्बाकू आदि नशा करने वाले धर्मभ्रष्ट हों। पोपों ने उन्हें भय दिखा दिया है कि दान के अधिकारी ब्राह्मण ही हैं, अन्य नहीं। परन्तु, पद्मपुराण इसका विरोध करता है—

धूम्रपानरतं विप्रं दानं कुर्वन्ति ये नराः।
ते नरा नरकं यान्ति ब्राह्मणो ग्रामसूकरः॥

अर्थात् धूम्रपान करने वाले ब्राह्मण को दान देने वाले नर्क में जाते हैं और दान लेने वाला ब्राह्मण ग्राम का सूअर बनता है।

पुराण की इस व्यवस्था के अनुसार ऐसे ब्राह्मणों के सभी दानदाता घोर नर्क में अवश्य जायेंगे। नशा करने वाला ब्राह्मण सूअर बनकर विष्टाखाया करेगा और वह भंगी के यहां डन्डे की मार खाता हुआ कत्ल किया जायेगा। इससे यह भी निश्चय हो गया कि संसार में जितने भी सूअर हैं वा हुए हैं वे पूर्वजन्म में नशा करने वाले सभी ब्राह्मण थे। उन्हें अब मनुष्य जन्म पाना ही दुर्लभ है। उनका पतन अवश्यम्भावी है।

सच तो यह है कि इन सब बातों का पता न तो नामधारी पंडितों को है और न यजमान को। दोनों ही अविद्यारूपी अन्धकार में डूबे हुए हैं।

दूसरी बात चमत्कारवाद की जोड़कर भय का प्रदर्शन किया है। भगवान् ने श्राप भी दे दिया और 'क्षणे रुष्टः क्षण तुष्टः' के अनुसार वे खुशामद करने पर प्रसन्न भी शीघ्र हो गये! है न कोरा धोखा? प्रथम तो भगवान् का मनुष्य बनना ही असम्भव है और न इस दृष्टान्त से अवतारवाद की पुष्टि होती है। क्योंकि, पौराणिकों के विश्वास के अनुसार भगवान् तभी अवतार लेता है जब कि धर्म का नाश तथा अधर्म की वृद्धि होती है वा भक्तों पर संकट आता है। परन्तु यहां पर कोई भी कारण प्रतीत नहीं होता और हम पूछते हैं कि भगवान् साधारण मनुष्यों की ऐसी अस्वाभाविक परीक्षा क्यों लेता है? असंख्यों मनुष्य जगत् में ऐसे हुए हैं, आज भी हैं, जो बड़े-बड़े अभिमानी हैं। परमात्मा की सत्ता से इन्कार करने वाले करोड़ों कम्युनिस्ट नास्तिक भरे पड़े हैं। भगवान् उनकी परीक्षा लेकर उन्हें कष्ट क्यों नहीं देता? केवल उसी वैश्य के पीछे क्यों पड़ गये?

पुनः जब वैश्य पास में आकर रोने लगा तो दण्डी जी कहते हैं—हे दुष्ट बुद्धे! तूने मेरी पूजा नहीं की। अतएव मेरी आज्ञा से ही तुझे बार-बार दुःख मिला है।

वाह! क्या कहने पोप जी तुम्हारे? क्या भगवान् अपनी पूजा स्तुति का इतना भूखा है कि मनुष्य से कहकर करवाता है? तुलसीदास जी ने एक दोहा लिखा है जो अवतारवाद को प्रकट करता है—

तुलसी या संसार में सबसे मिलिये धाय।
ना जाने किस वेष में नारायण मिल जाय॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भगवान् की प्राप्ति योग-साधन से होती है। पौराणिकों का भगवान् तो कच्छ-मच्छ और सूअर का भी अवतार लेता है। यदि इस वेष में किसी को भगवान् मिल भी गये तो कैसे पता चलेगा कि आज मुझे कच्छ मच्छ के रूप में भगवान् के दर्शन हो गये? ये समस्त बातें बेसिर पाँव की अवतारवादियों ने स्वार्थवश लिख मारी हैं।

दंडी भगवान् से आशीर्वाद पाकर जब वैश्य दामाद सहित नाव के द्वारा उस पार पहुँचा तो अपने आने की सूचना देने के लिए एक दूत को घर भेजा। दूत ने सन्देश दिया कि साहूकार ज़ी बहुत सा द्रव्य लेकर अपने बन्धुओं सहित नगर के निकट ही आ पहुंचे हैं। उस समय साहूकार वैश्य की पत्नी और पुत्री भगवान् की पूजा में लगी थीं। वैश्य की पत्नी दूत के मुख से पति के आगमन का शुभ सन्देश सुनकर शीघ्र ही पूजा समाप्त करके साहूकार के दर्शन के लिए चली गई। पीछे से उसकी पुत्री कलावती भी अपने पिता और पति के दर्शनार्थ बिना प्रसाद खाये वहाँ पहुँच गई। यहाँ भगवान् केवल प्रसाद न खाने से ही पुनः रुष्ट हो गये और कलावती के पति को जो नाव में से उतरा नहीं था, नाव सहित जल में डुबा देते हैं।

समीक्षा—अब विचारणीय बात यह है कि इस कथारूपी उपन्यास के बनाने वाला तो संसार में है नहीं; उसके बांचने वालों और सुनने वालों से ही पूछना चाहिए कि घर से तो वैश्य और उसका दामाद दो ही व्यापार करने गये थे। अब उधर से कौन से बांधवों सहित वापिस आ गये जो कहो कि बाँधवों सहित व्यापार करने गये थे तो वैश्य ओर दामाद के जेल में रहने के समय तक वे बांधव कहाँ रहे थे? उनकी तो पूर्व से ही कोई चर्चा नहीं है। देखो, हैं न प्रसंगविरुद्ध बातें।

कलावती ने जब वहां जाकर देखा कि उसका पति जल में डूब गया है तो उसको मरा जानकर वह भी जल में डूबकर सती होने को तैयार हो गई। इतने में ही भगवान् ने आकाशवाणी द्वारा समाचार दिया कि इसका पति प्रसाद न खाने के कारण जल मे डूब गया है। यदि यह भगवान् का प्रसाद खाकर वापिस यहाँ आवेगी तो इसका पति जीवित होकर इसे अवश्य प्राप्त हो जायगा। आकाशवाणी सुनकर वैश्य पुत्री शीघ्र ही घर जाकर प्रसाद ख़ाकर वापिस वहाँ पहुँची तो उसका पति नाव सहित जल के ऊपर आ गया और बच गया।

भला सोचने की बात है कि वैश्य का घर घटनास्थल से १-२ मील दूर तो होगा ही। कन्या को घर जाने आने में भी कुछ समय लगा होगा। इतनी देर तक उसका पति जल में डूबा रहा और मरा नहीं? जबकि प्रतिवर्ष बरसात के दिनों में गंगा आदि नदियों मे बाढ़ आ जाने से कहीं न कहीं नाव डूब जाने के समाचार मिलते हैं। कितने ही व्यक्ति डबकर मर जाते हैं। क्या वे सभी पापी होते हैं? आजकल कहीं डूबी हुई नाव उछलती हुई क्यों दिखाई नहीं देती? और आकाश-वाणी रेडियो का नाम है: क्या भगवान् मनुष्य बनकर किसी रेडियो स्टेशन पर आकाश में रहता था अथवा उसने वैश्य की नाव डूबने के स्थान तक टेलीफोन लगा रखा था? यह समाचार तो भगवान् किसी भी वेष में आकर वैश्य को दे सकता था जैसा कि पहले दण्डी वेष मे आकर पूछा कि तेरी नाव में क्या है? वह भगवान् था या औरंगजेब जैसा कोई खूंखार बादशाह था जो जरा सी बात पर रुष्ट होकर उसे इतना बड़ा दण्ड दिया और फिर उस पर भी तारीफ की बात तो यह हुई कि प्रसाद

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

खाते ही भोला भगवान् उस कन्या पर बहुत शीघ्र प्रसन्न भी हो गया और उसका पति बचा दिया।

दूसरी बात यहां पर यह भी विचारणीय है कि—

आसीतामरणात्क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणो।
यो धर्म एकपत्नीनां कांक्षन्ती तमनुत्तमम्॥

यह मनुस्मृति का लेख है कि धर्म की इच्छा रखती हुई विधवा मरणपर्यन्त नियत होकर ब्रह्मचर्य व्रत धारण करे और सती नारी मूल फल खाकर अपने शरीर को दुर्बल करे, ताकि कामदेव न सतावे। वहाँ कहीं नहीं लिखा कि पति के मरने पर अग्नि में जलकर वा जल में डूब कर सती हो जाना चाहिये। आत्मघाती को शास्त्रों में नरकगामी बताया है। यदि यह सतीप्रथा प्राचीन काल में भी होती तो दशरथ के मरने पर तीनों रानियाँ सती क्यों न हुयीं? बाली वा रावण आदि की पत्नियाँ जल कर भस्म क्यों न हुयीं?

वस्तुतः यह सती-प्रथा तो कलिकाल की देन थी, जो शास्त्रविरुद्ध थी। किन्तु कुछ समझदार महानुभावों ने इसे समाज का कलंक समझकर बन्द करा दिया। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह पौराणिक सत्य-नारायण कथा सती प्रथा चलने के पश्चात् ही गढ़ी गई है। जिसका लेख व्यास जी के बनाये स्कन्दपुराण में बताया जाता है। परन्तु व्यास जी के समय द्वापर में सती प्रथा थी नहीं। तब यह संगति कैसे बैठ सकती है। सच तो यह है कि व्यास जी ने आधुनिक कोई भी पुराण बनाये ही नहीं हैं। यदि बनाये हैं तो सप्रमाण सिद्ध करके उनके ग्रंथों से सती प्रथा का कोई लेख दिखावें और साथ ही यह भी उत्तर दें कि जब तक व्यास जी ने स्कन्दपुराण नहीं रचा था तो उससे पूर्व कौन-सी कथा सुनी जाती थी।

चौथा अध्याय समाप्त

अथ पंचमोऽध्यायः

इस अध्याय में प्रसाद का माहात्म्य खूब बढ़ा चढ़ाकर लिखा है। बताया जाता है कि एक तुंगध्वज नाम के राजा ने सत्यनारायण का प्रसाद छोड़ा था। जो ग्वाले लोगों ने पास बैठे हुए राजा को दिया था। किन्तु राजा उसे वहीं छोड़कर घर चला गया। इसी बात पर सत्यनारायण ने रुष्ट होकर धन आदि सहित उसके सौ पुत्रों को मार दिया। राजा ने इस दुर्घटना का कारण प्रसाद का त्यागना समझकर स्वयं ग्वालों को साथ लेकर कथा सुनी और प्रसाद खाकर भगवान् से क्षमायाचना की। तब भगवान् ने प्रसन्न होकर उसके सौ पुत्रों को जीवित कर दिया।

समीक्षा—आधुनिक पौराणिक पंडित शूद्रों के हाथ का छुआ अन्न सेवन करना निषेध मानते हैं और शूद्रों को वेद पढ़ना सुनना भी पाप समझते हैं। यदि यह बात सत्य होती तो ग्वाले जो कि शूद्र ही थे उनका छुआ प्रसाद कथावाचक पंडित ने क्यों खाया और उनके सामने वेद मन्त्रों का उच्चारण भी क्यों किया? जबकि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शंकराचार्य जी ने व्यवस्था दे दी कि यदि शूद्र वेद मन्त्र सुने तो उसके कानों में शीशा भर देना चाहिए। वह मन्त्रोच्चारण करे तो जिह्वा काट लेनी चाहिए। तब आजकल नामधारी सनातनी पंडित कथावाचक शूद्रों के हाथ का भोजन क्यों करते हैं और क्यों उनके समक्ष वेद मन्त्र बोलते हैं ? यह अपराध तो तथाकथित सनातनी पंडितों का ही है। इसका कारण लोभ तथा स्वार्थ के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ? इसके विपरीत शंकराचार्य जी यह लिखना भूल गये कि जो ब्राह्मण स्वार्थवश शूद्रों का भोजन करे और उन्हें वेद मन्त्र सुनावे तो उसकी भी जिह्वा काट लेनी चाहिये। यहाँ पर उन्होंने विषमता उत्पन्न कर दी। यहाँ सत्यनारायण कथा से ही सिद्ध है कि शूद्रों को भी वेद मन्त्र सुनने व पढ़ने का अधिकार है। जैसा कि—'यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्य." इत्यादि मन्त्र का आदेश है। पवित्र सदाचारी शूद्र के हाथ का भोजन करने में कोई दोष नहीं है। यही आर्य लोगों की मान्यता है।

अब सौ पुत्रों के मरने की बात भी सुनिये—ऐसे तो आजकल भी बहुत से मनुष्य प्रसाद नहीं लेते। उनके पुत्र आदि नष्ट क्यों नहीं होते ? यहाँ पोप जी ने बड़ी चतुराई से काम लिया है। लोगों को केवल भय दिखाया है कि कथा के बीच में से कोई उठकर न जावे। जो न जावेगा तो कुछ न कुछ पैसे आरती में अवश्य ही चढ़ावेगा। अन्यथा हमारी आर्थिक हानि होगी। इसीलिए प्रसाद का माहात्म्य लिख दिया।

कथावाचकों से पूछना चाहिए कि पुत्रों के मरने के पश्चात् राजा ने कथा सुनी तो इसमें भी समय लगा होगा। क्या तब तक उसके सौ पुत्र मरे पड़े रहे ? जबकि मरते ही शमशान भूमि में लेजाकर जला देते हैं। जीव शरीर से निकल जाता है तो वापिस नहीं आता। फिर कथा सुनने और प्रसाद खाने मात्र से पुत्र जीवित कैसे हो गये ?

ईसाई लोगों की बाईबल का भी यही लेख है कि ईसा को फाँसी लगी और उसके शिष्यों ने उसे जमीन में दफना दिया। किन्तु तीसरे दिन ईसा जीवित होकर आकाश को उड़ गये। तब तो उनकी बात भी सत्य ठहरती है। स्वार्थी लोगों ने अपनी प्रतिष्ठा एवं पेट पूजा के लिए ऐसे-ऐसे मिथ्या चमत्कार जोड़ दिए हैं।

आगे कथा के माहात्म्य में लिखा है कि जो मनुष्य इस कथा को सुनता है उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। उसे सब प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं और वह सभी बन्धनों व भय से मुक्त हो जाता है।

समीक्षा—कथा सुनने मात्र से कुछ भी नहीं होता। जब तक कि सत्यमार्ग का अनुसरण व आचरण न करें। यही तो कारण है कि आज तक जितने भी लोगों ने भगवत्कथा सुनी, वे उस पर आचरण न करने से बन्धन तथा भय से मुक्त नहीं हो सके। अपितु और भी अधिक कष्टों में फंसे हैं। परन्तु जो धनी हुए हैं वे कथा सुनने से नहीं, बल्कि अपने व्यापार में परिश्रम करने से हुये हैं। क्या अमेरिका जो संसार में सर्वाधिक वैभवशाली देश माना जाता है, उसका कारण आपका यह व्रत है वा उनका दिन रात का परिश्रम है ? कथाकार ने तो ऐसा लिखकर लोगों को निकम्मा और आलसी बनने का मार्ग दिखाया है, जैसे मलूकदास ने कहा—

अजगर करे न चाकरी पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गये सबके दाता राम॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इनके इस वचन ने तो वेद के "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ँसमा:" इस मन्त्र पर पानी ही फेर दिया। वेद कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीने का आदेश देता है। किन्तु, कथाकार केवल कथा सुनने मात्र से ही सारी इच्छायें पूर्ण कराने का लोभ देता है। यदि इस बात पर उन्हें विश्वास है, तो कथावाचक लोग अपने घर व्रत कथा द्वारा धनाढ्य क्यों नहीं हो जाते ? वे क्यों चन्द पैसों के लिए यजमान का द्वार खटखटाते हैं। देखा जाय तो ये ही लोग अधिक दुःखी और दरिद्री दिखाई देते हैं। यदि पुरोहित लोग यजमानों को न बहका कर स्वयं विद्वान् वन तथा यजमान को सत्यमार्ग दिखावें तो ज्ञान-विज्ञान की कितनी उन्नति होव। आश्चर्य तो इस बात का है कि बाल की खाल निकालने वाले वकील बड़े-बड़े बुद्धिमान् वैज्ञानिक व्यक्ति भी इस मिथ्या माहात्म्य में विश्वास किये बैठे हैं। उन्होंने कभी भी इसकी अवैज्ञानिकता पर ध्यान नहीं दिया।

आगे इसी पंचम अध्याय में उन लोगों के अग्रिम जन्म का वृत्तान्त लिखा है, जो पहले इस व्रत कथा को सुन चुके थे। जैसे—

शतानन्दो महाप्राज्ञः सुदामा ब्राह्मणो ह्यभूत्।
तस्मिन्जन्मनि श्रीकृष्णं ध्यात्वा मोक्षमवाप ह॥
काष्ठभारवहो भिल्लो गुहो राजा बभूव ह।
तस्मिन्जन्मनि श्रीरामं सेव्य मोक्षं जगाम वै॥

इत्यादि श्लोक लिखे हैं। इसका अर्थ है कि काशीपुर निवासी शतानन्द नाम का ब्राह्मण इस कथा के प्रभाव से अग्रिम जन्म में सुदामा नाम का ब्राह्मण हुआ। जो श्रीकृष्ण का ध्यान करके मुक्ति को प्राप्त हुआ। तथा लकड़हारा द्वितीय जन्म में श्रीराम के समय राजा गुह हुआ। वह भी श्रीराम की सेवा करके संसार से तर गया।

समीक्षा—अब इसकी सत्यता पर जरा ध्यान दीजियेगा—कलियुग की आयु चार लाख बत्तीस हजार वर्ष तथा द्वापर की आठ लाख चोंसठ हजार वर्ष की आयु है। सुदामा श्रीकृष्ण का समकालीन द्वापर युगीन व्यक्ति था, जो पूर्व जन्म में शतानन्द नाम का ब्राह्मण लिखा है। यह कथा सुनकर भी दोनों जन्मों में निर्धन ही बना रहा। इसका अर्थ यह हुआ कि शतानन्द और सुदामा दोनों ही द्वापर युग के व्यक्ति थे। अब तो इसमें कुछ भी शंका नहीं रही कि वर्तमान सत्यनारायण कथा कलियुग में ही लिखी गई है। जिसमें द्वापर की अतीत घटनायें वर्णित हैं। दूसरा व्यक्ति लकड़हारा था, जिसने शतानन्द ब्राह्मण से ही व्रत कथा का प्रभाव सुना था। तब तो लकड़हारा भी द्वापर युग का व्यक्ति सिद्ध हुआ। इसने त्रेतायुग में गुह नाम से जन्म लिया जो श्रीराम का समकालीन था। द्वापर से पूर्व त्रेतायुग बीत चुका था, जिसके बारह लाख छियानवे हजार वर्ष होते हैं। तब क्या द्वापर युग का लकड़हारा द्वापर में ही जन्म लेगा वा उल्टा त्रेता युग में ? और यदि त्रेतायुग को द्वापर के पश्चात् गिनें, तो भी यह ऐतिहासिक दृष्टि से गलत ठहरता है। यहाँ प्रश्न उठता है कि जब जीव मृत्यु के तुरन्त पश्चात् अथवा बहुत थोड़े समय में ही पुनर्जन्म प्राप्त करता है तो द्वापर के लकड़हारे का जीवात्मा त्रेता में गुह के जन्म होने तक कहाँ ठहरा रहा ? उसने लाखों वर्षों तक जन्म क्यों नहीं लिया ? यदि कहो कि उसकी मुक्ति हो गई

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

थी और वह इतने वर्षों तक मुक्ति में रहा, तो भी गलत है। क्योंकि मुक्ति की अवधि शास्त्रानुसार—३१, १०, ४०,००००००००० वर्ष की बताई जाती है। पश्चात् मुक्त जीव संसार में पुन: किसी महान् आत्मा के रूप में जन्म ग्रहण करता है और पौराणिक मुक्ति को सादि-अनन्त मानते हैं कि मुक्ति के पश्चात् जीव पुनर्जन्म नहीं लेता। तो लकड़हारे की मुक्त आत्मा ने गुह के रूप में फिर जन्म क्यों लिया? इसका सीधा अर्थ यह है कि लकड़हारा मुक्त हुआ ही नहीं और लाखों वर्षों के पश्चात् यह पता भी कैसे लगा कि यह उसी ने जन्म लिया है, इसमें प्रमाण क्या है?

इसी प्रकार राजा तुंगध्वज, उल्कामुख तथा साधु वैश्य के पुनर्जन्म की असम्भव गाथायें लिख मारी हैं। जिनमें चमत्कारवाद के अतिरिक्त सत्य कुछ नहीं है।

प्रिय पाठको! इन मिथ्या कथाओं को सुनते-सुनाते सदियाँ बीत गई और अब इस विज्ञान के युग में जबकि महर्षि दयानन्द ने सर्वत्र वेदों का प्रकाश फैला दिया है, पहले जैसा अंधकार नहीं रहा। अब तो इन चमत्कारवादियों के चंगुल से निकलकर वेद की शरण में आ जाओ। तभी आपका कल्याण होगा। अब बुद्धि से सोचने का समय आ गया है। अंधविश्वास को त्याग कर वेद के सत्यमार्ग का अनुसरण करना सीखो। जैसे एक पंख से पक्षी नहीं उड़ सकता और एक पहिये की गाड़ी नहीं चल सकती, वैसे ही ज्ञान और कर्म रूपी दोनों पहियों से जीवन की गाड़ी चलती है, एक से नहीं चलती।

यदि आप सच्ची सत्यनारायण कथा सुनना चाहते हैं तो आर्य विद्वानों को बुला कर सुनिये। जिसको सुनने तथा आचरण करने से निश्चय ही भवबन्धन कट जाते हैं। सारे संशय दूर हो जाते हैं। यदि श्रद्धालु पाठकों ने इस लेख को पसन्द किया तो मैं शीघ्र ही सरल भाषा में दूसरा लेख 'वैदिक सत्यनारायण कथा' आपकी भेंट करूँगा। इसकी सफलता आपके सहयोग पर ही निर्भर है।

अंत में हमारा विश्वास है कि कोई भी पौराणिक जगत् का विद्वान् हमारी इन वैदिक मान्यताओं का खण्डन करके वर्तमान सत्यनारायण कथा को सप्रमाण सत्य सिद्ध नहीं कर सकता। इसके लिये लेखक हर समय तैयार है। □

नई……नई……बिल्कुल नयी

सद्भाव भाव भरी श्रद्धापूर्ण भाषायुक्त

महर्षि दयानन्द की जीवनी

१६ चित्र : पृष्ठ २१२

तिरंगा बढ़िया कवर : मूल्य १)५० ।

शीघ्रता कीजिए :

भारी संख्या में मंगाकर बांटें

दयानन्द संस्थान नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रामलाल कपूर ट्रस्ट का विशिष्ट प्रकाशन

आज ही आदेश भेजकर अपनी प्रति सुरक्षित करालें

ऋषि दयानन्द के वेद भाष्य, सत्यार्थप्रकाश—संस्कार विधि, १४ लघु ग्रंथों का संग्रह आदि ग्रंथों के **विशिष्ट, सुन्दर, शुद्ध एवं प्रामाणिक संस्करण** समान आकार में छापे हैं। प्रत्येक ग्रन्थ के साथ सम्बन्ध रखने वाली १०-१२ सूचियाँ अन्त में दी हैं। इन सूचियों से इन संस्करणों का महत्व बहुत बढ़ गया है। निम्न ग्रन्थ छप चुके हैं।

१—**ऋग्वेदभाष्य** (संस्कृत हिन्दी) वेद विषयक सहस्रों टिप्पणियों के सहित भाग १-३०-००, भाग २-२५-००, भाग ३-२०-०० । आगे छपाई चालू है।

२—**सत्यार्थप्रकाश**—नवीन परिष्कृत द्वितीय संस्करण। मूल्य (१२५० पृष्ठ) २४-००, राजसंस्करण ३०-०० ।

३—**संस्कारविधि**—मूल्य १०-००, राजसंस्करण १२-०० ।

४—**दयानन्द लघु ग्रंथ संग्रह**—१४ ग्रन्थों का अपूर्व संग्रह एवं सम्पादन। मूल्य २०-०० ।

५—**उणादिकोष**—ऋषि दयानन्द की स्वरचित वृत्ति, १२ प्रकार की सूचियों के सहित। मूल्य ७-००, सजिल्द १०-०० ।

६—**ध्यानयोग प्रकाश**—स्वामी लक्ष्मणानन्द कृत। मूल्य ८-०० ।

७—**महाभाष्य**—(हिन्दी व्याख्या सहित) व्याख्याता—पं० युधिष्ठिर मीमांसक। मूल्य—भाग २, २५-००, भाग ३, २५-०० ।

७० पुस्तकों का बृहत्सूचीपत्र बिना मूल्य मंगवावें।

रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़ (सोनीपत)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१९७६ के लिए आकर्षक डायरी

वैदिक-दैनन्दिनी (डायरी)

नयी साज सज्जा

अनेकों आकर्षण युक्त

पहले से दुगने पृष्ठ

२४ रंगीन चित्र

साइज़ पहले जितना

एक पृष्ठ पर एक तिथि : दूसरा संस्करण

मूल्य

अजिल्द ५) =३२५) सैंकड़ा

सजिल्द ६) =४००) सैंकड़ा

१९७६ का आकर्षक कैलेंडर

५ रंगों में छपा : बड़े साइज़ का कैलेंडर

तैयार है

५०) सैंकड़ा

अपना आदेश तुरन्त भेजें

दयानन्द संस्थान नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार का
औषधियाँ प्रयोग करें

गुरुकुल कासारि

खाँसी की अपूर्व गुणकारी औषधि

उपयोग : किसी भी कारण से हुई खांसी, नजला, जुकाम आदि में लाभदायक है।

सेवन विधि : दिन में तीन बार छोटी चम्मच लेकर उंगली से चाटें।

आँखों के अनेक रोगों के लिए

संसार प्रसिद्ध

भीमसेनी सुरमा

च्यवनप्राश

उत्तम स्वादिष्ट रसायन

शरीर को बलिष्ठ और कान्तिमय बनाता है।

शारीरिक क्षीणता एवं फेफड़ों के लिए प्रसिद्ध

आयुर्वेद रसायन

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी

पो० गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी [सहारनपुर]

शाखा कार्यालय —चावड़ी बाजार, दिल्ली-६

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्वस्थ जीवन एवं सुखी आदर्श समाज का मूलाधार

—आचार्य ब्रह्मदत्त शर्मा आयुर्वेदालंकार

'संस्कार'

यह शब्द 'सम्' उपसर्ग-पूर्वक 'डुकृञ् करणे'-धातु से बना है। 'सम्' उपसर्ग का अर्थ है—समीचीन अर्थात् अच्छा। इसकी युक्ति विशेषण-क्रियाविशेषण दोनों रूपों में होती है; अतः दो अर्थ बनेंगे, तद्यथा समीचीन ('अच्छा': विशेषण), और समीचीनतया-सम्यक्तया (अच्छे प्रकार से : क्रियाविशेषण)। 'डुकृञ् करणे'-धातुका अर्थ है, 'करना' जिससे कर्म-कार्य-कर्तव्य आदि शब्द बनते हैं। दोनों का संयुक्त अर्थ बना—अच्छा कर्म; तथा अच्छे प्रकार से करना, बनाना, संवारना, सुधारना आदि।

इनमें से दूसरा, अर्थात् क्रियाविशेषण-परक, अर्थ अधिक ठीक है। विशेषण परक अर्थ के लिए तो 'सत्कर्म' 'सत्कार्य' आदि शब्द अधिक ठीक हैं। और उपसर्गों की युक्ति तो विशेषतया एवम् अधिकतर होती ही क्रियाविशेषण-परक है। अतः, 'संस्कार' का समीचीनतर यौगिक अर्थ बना अच्छे प्रकार से करना, बनाना, सँवारना, सुधारना, आदि।

वस्तुतः, उपसर्ग (प्र-आदि)[1] के योग से धातु का अर्थ बिलकुल ही बदल जाता है। उदाहरणार्थ—'हृञ् हरणे' (हरना, छीनना, चुराना) धातु में क्रमशः प्र-आङ्-सम्-वि-परि-उपसर्गों के योग से बने प्रहार (आघात, चोट मारना) आहार (=भोजन, जुटाना) संहार (=विनाश, नाशन) (उपसंहार=समेटना) विहार (भ्रमण, भ्रमण-स्थल) परिहार (=बचाव, विकास, बचना) शब्दों के अर्थ बिल्कुल ही भिन्न प्रकार

१. प्र-परा-अप-सम्-अनु-अव-निस्-निर्-दुस्-दुर्-वि-आङ्-नि-अधि-अपि-अति-सु-उत-अभि-प्रति-परि-उप-एते प्रादयः (उपसर्गाः)।'

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के हो गये हैं ।[१] इसी प्रकार से गत्यर्थक 'गम्'—धातु के सोपसर्ग परागम-अपगम-संगम-अनुगम- अवगम- निर्गम-दुर्गम- आगम-आगमन-निगम-अधिगम -अतिगम- सुगम-उद्गम-अभिगम-प्रतिगम-परिगम-उपगम-उपगमन-आदि शब्दों के अर्थ बिल्कुल भिन्न-भिन्न हैं ।

'संस्कारो गुणान्तराधानम्'—

'संस्कार' का योगरूढि अर्थ है, 'गुणान्तराधान' । अर्थात्, नये गुणों का आधान । पूर्ववर्ती गुण-दोषों का निराकरण करके नये गुणों का समावेश करना। अर्थात्, नवीकरण । इस प्रक्रिया के दो अंग होते हैं—प्रथम, पूर्ववर्ती गुणदोषों का निराकरण या निष्कासन; और द्वितीय, नये गुणों का आधान यथा—मैले कपड़े का प्रथम तो मैल धो डालना और फिर उस पर पीला—आदि रंग इच्छानुसार चढ़ाना। ये दोनों क्रियाएँ जिसमें विद्यमान हों, वह 'पूर्ण' संस्कार बनेगा । परन्तु, व्यवहार में पहली-दूसरी दोनों क्रियाएँ पृथक्-पृथक रहने पर भी 'संस्कार' कहाती हैं । यथा—मैले कपड़े का मैल प्रक्षालन-आदि द्वारा दूर करना भी 'संस्कार' ही है; तथा मल-रहित स्वच्छ वस्त्र हो तो उसे पीला रंग डालना भी 'संस्कार' ही है । तब पहली क्रिया को एक विशेष संज्ञा दे दी जाती है, 'शोधन' । यथा—पारद-गन्धक-अभ्रक-ताम्र-लौह-स्वर्ण-रजत-आदि खनिज द्रव्यों का बोधन । वत्सनाम-धत्तूर-अहिफेन-कारस्कर-मल्ल-सर्पविष-आदि विषद्रव्यों का विविध द्रव्यों एवं विधियों द्वारा शुद्धी-करण भी 'शोधन'-संस्कार है । पारद के आठ प्रचलित संस्कारों में से स्वेदन-मर्दन-मूर्च्छन-पातन-आदि प्रथम कोटि के हैं और उत्थापन-शोधन-प्रभृति द्वितीय कोटि के । वस्तुत: मूर्च्छन-उत्थापन एवं पातन-बोधन ये दो युग्म प्रथम-द्वितीय कोटि वाले पूर्ण संस्कार हैं, जिनमें दोनों क्रियाएँ परस्पर-पूरक रूप में सम्पन्न करायी जाती हैं ।

जीवन में सँस्कार—

केवल वस्त्र-पारद-आदि निर्जीव द्रव्यों में ही नहीं, सजीव शरीर में भी संस्कार किये जाते हैं । केवल किये ही नहीं जाते, अपितु उत्तरोत्तर अनुवृत्त एवं प्रवृद्ध भी होते हैं । जिस प्रकार, गाड़ी के पहिये को ठीक लीक या पटरी पर चला देने का संस्कार करने पर वह उसी लीक या पटरी पर आगे-आगे बढ़ता जाता है, तथा स्टीयरिंग एवं गियर द्वारा मोटर के पहिये को सही राजमार्ग पर कर देने से वही उसी सीध में मोटर को भगाये लिये जाता है, और शोधन-संस्कारित पारद प्रयोग में अपने अविकारी उपकारी गुणों को प्रत्यक्ष कराता जाता है; इसी प्रकार, सद्वृत्त-सदाचार आदि द्वारा संस्कारित जीवन भी अपने कौलीन्य-आभिजात्य-साद्गुण्य को प्रकट करता रहता है, बल्कि आगे-आगे अनुवृत्त करता जाता है । इसीलिए, किसी सदाचारी-सद्गुणी-परोपकारी व्यक्ति के सम्पर्क में आते ही हम निस्संकोच कह उठते हैं, 'इस व्यक्तिको संस्कार अच्छे मिले हैं तभी यह इतना अच्छा है ।' यहाँ तक कि अबोध बालक में अच्छी आदतों को देखते ही हमें उसके अच्छे संस्कार का ध्यान हो जाता है, जैसे फल को देखकर हमें उसके बीज का ध्यान हो जाता है । इसी तथ्य को उपमा बनाकर ही महाकवि कालिदास ने 'रघुवंश' में रघुवंशियों का वर्णन किया है

---

१. 'उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते (······,बलादन्यः प्रतीयते) ।
प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत् ॥'

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कि उसके सत्कर्मों का अनुमान उनके कर्म-पारिणाम को देखकर ही होता था ('फलानुमेया: प्रारम्भा: संस्कारा: प्राक्तना इव'-रघुवंश) । प्रसंगवश, आज के सन्दर्भ में यह भी ध्वनि इस वाक्य से निकलती है कि रघुवंशी महापुरुष आज के षड्यन्त्री-डाकापन्थी गद्दीतन्त्रियों के समान ढिंढोरची नहीं हुआ करते थे, अपितु मितभाषी-कर्मठ एवं संस्कारी होते थे। वे आज के से गद्दीलोलुप अलीक-'जनसेवक' नहीं, अपितु प्रजारंजक (राजा प्रकृतिरंजनात्) एवं जन-उन्नायक सज्जन होते थे।

जीवन में संस्कारों की महत्ता तथा आवश्यकता—

ऊपर हमने देखा है कि संस्कार के द्वारा हम किसी भाव में नवीन गुणों का आधान-आविर्भाव करते हैं जो उत्तरोत्तर अनुवृत्त होते हैं और कि निर्जीव-सजीव दोनों में यह क्रिया प्रतिफलित होती है। इस दृष्टि से, साद्गुण्य एवं योग्यत्व के सम्पादनार्थ निर्जीव-सजीव दोनों के लिए 'संस्कार' न केवल उपादेय, अपितु आवश्यक, होता है। विशेषत:, सजीव भावों के लिए तो 'संस्कार' की महत्ता एवं आवश्यकता अनिवार्यतया आवश्यक होती है। कारण स्पष्ट है। निर्जीव भाव निर्बोध होता है और उसे जिस प्रकार से संस्कारित करके जो गुण या कर्म उसमें समाविष्ट कर दिया जाता है, वह उसी ढर्रे पर चलता जाता है, बशर्ते कि मार्ग में कोई 'नयी' बाधा न आ जावे और 'नयी' बाधा का प्रतिकार संस्कार कर देने पर वही ढर्रा·गमन चालू रहता है। उदाहरणार्थ-शोधित पारद अपने संस्कारलब्ध एवं संस्काराविर्भूति -गुणों का प्रभाव दिखाता जायगा, बशर्ते कि किसी नये दोष या बाधा का संसर्ग न हो जावे। शोधित वत्सनाभ अपने अवसादक दोष से रहित हो जाने के कारण उपकारी प्रभाव दिखायेगा। इत्यादि। यह बात 'निर्जीव' भावों में हम देखते हैं। और सजीव बैल को भी यदि कोल्हू में जोतने तथा नेत्रों पर खोये बाँधने वाला संस्कार करके हम 'निर्बोध' बना डालें तो वह भी कोल्हू चलाने के अनन्त ढर्रे पर लग जाता है ('प्रक्षान्तं नैव गच्छन्ति तिलपीडकवद् गतौ'—चरक)। वह मशीन की तरह बँधा-बँधाया सधा-सधाया काम करता जाता है।

परन्तु, सजीव की बात दूसरी है। उसकी दसों इन्द्रियाँ खुली हैं जो उसको यत्र-तत्र-सर्वत्र भटकाती रहती हैं और प्राय: दुष्प्रवृत्त करती रहती हैं। जड़ प्रकृति के साथ सम्पर्क एवं रमण तो उसे अनन्त भटकन प्रदान करता है। सत्·चित् गुणों वाला आत्मा जब सत्-चित्-आनन्द-मय परमात्मा की ओर न जाकर केवल सत्ता-गुण वाली भोगमय जड़ प्रकृति की ओर भागता है तो दसों इन्द्रियाँ स्वतंत्र होकर क्षणिक अवास्तविक सुखाभास के लिए अपने-अपने विषयों में रत होजाती हैं।

प्रत्येक इन्द्रिय की यह विषयभोग स्वच्छन्दता व्यक्ति को 'दशमुख' (जिसकी दसों इन्द्रियाँ अपनी-अपनी स्वच्छन्द अनियन्त्रित विषयोन्मुख प्रवृत्ति रखती हों) अर्थात् 'रावण' बना डालती है; यह स्थिति उस अवस्था से सर्वथा विपरीत है जब मन रूपी सारथी नियंत्रण रूपी लगाम द्वारा शरीर-रूपी रथ में दसों इन्द्रियों को बाँधकर रखता है तथा शरीर के लिए उपकारी उपयोगी विषयों में ही प्रवृत्त होने देता है जिनके कारण वह व्यक्ति 'दशरथ' कहलाता है।

—और, समाज में भी—

अनियन्त्रित-स्वच्छन्द-विषयोन्मुख इन्द्रियों की 'दशमुख' प्रवृत्ति के कारण

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह आसक्ति, वितृष्णा, ईर्ष्या, असूया, भय, द्रोह, परिग्रह समय, मत्सर, दम्भ, अहंकार, आलस्य आदि के द्वारा नानाप्रकार के मानसिक, शारीरिक रोगों की उत्पत्ति होती है। व्यष्टि ही नहीं, समष्टि में भी विविध व्याधियाँ एवं अव्यवस्थाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। असत्य, हिंसा, अन्याय, अत्याचार, तस्करी, चोरी, डकैती, लूट-मार, बलात्कार, अवैधव्यापार, आदि सामाजिक व्याधियाँ भी इसी प्रक्रिया से उत्पन्न होती हैं। ऐसा अविवेकी दशमुख व्यक्ति मैला, कुचैला, गाली गलौज करने वाला, फ़ूहड़, कलहप्रेमी, दुर्व्यसनी होता है। वह स्वार्थी होने के कारण स्वार्थ के लिए दूसरों का अहित करने वाला 'राक्षस' तो होता ही है, बल्कि उसमें 'दुष्टता' कभी-कभी इतनी अधिक होती है कि वह स्वार्थ के विना भी निरर्थक ही परहानि करता है (तेऽमी मानुषराक्षसा: परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये, ये निघ्नन्ति निरर्थकम् परहितं ते के न जानीमहे' —भर्तृहरि) मांस न खाना हो तो भी निरीह प्राणियों को मारता फिरता है। और यह तो ऐसों के लिए आम बात है कि अपने घर की गन्दगी दूसरे के घर के सामने डाल दें। अपने पाप दूसरों पर थोप दें।

आज समाज में तथा राजनीति के क्षेत्र में जो भारी असामाजिकता, अनैतिकता एवं दुराचारिता व्याप्त है, उसके कारण ऐसे ही 'दशमुख' व्यक्ति हैं। ये चोरी, तस्करी, हत्या करने वाले एवं निपट नग्न अपराधी होते हैं। खाने-पीने के द्रव्यों में, बल्कि प्राणरक्षक औषधों में भी मिलावट करके या नकली औषधादि प्रस्तुत करके ये लोग काला व्यापार करते हैं तथा जनता को व्याधि एवं मृत्यु के घाट पहुँचाते हैं। तस्करी के द्वारा राष्ट्र एवं देश की भयंकर हानि करते हैं, बल्कि अपने ही देश एवं राष्ट्र को बेच खाते हैं। राजनीति के क्षेत्र में, झूठी जनसेवा का दम भरने वाले ये 'दशमुख' व्यक्ति पूरे 'बगुला-भगत' होते हैं, रिश्वत, फरेब और भ्रष्टाचार से चुनाव जीतते हैं, तस्करों भ्रष्टाचारियों से साँठ-गाँठ रखकर और लाइसेंस परमिट बेचने का काला धन्धा करके करोड़ों अरबों की काली कमाई करते हैं, राष्ट्रीय आर्थिक औद्योगिक विकास के नाम पर भाई-भतीजों बेटों को राष्ट्रीय भूमि मिट्टी के दाम सौंपते सौंपवाते हैं, बैंकों से अपने लिए लाखों की चोरी करवाते हैं तथा शेयरहोल्डरों की पूँजी दबाकर अपने नामपर विदेशों में व्यवसाय एवं पूँजी विनियोग करते हैं और राष्ट्रसेवा जनसेवा के नाम पर निरीह जनता को पूरा उल्लू बनाते हैं। जनता में ऐसी करतूतों की चर्चाएँ बहुत प्रचलित हैं परन्तु स्पष्ट बोलने में सबको स्वभावतया डर लगता है।

बड़े खेद की बात है कि सामाजिक सार्वजनिक एवं प्रशासनिक क्षेत्र में प्रत्येक इकाई में आज भ्रष्टाचार व्याप्त है। बिना रिश्वत एवं भ्रष्टाचार के कोई भी व्यक्ति काम नहीं करता। क्लर्क, चपरासी, मुन्शी, अफसर, पुलिस, इंजीनियर यहाँ तक कि अध्यापक, परीक्षक, डाक्टर, आदि भी इस काजल कोठरी में कालिख पुते होतेजा रहे हैं (काजल की कोठरी में कैसो हू सयानो जाय, एक रेख कालिख की लागि है पै लागि है। रेल-डाक कस्टम आयकर, बिक्रीकर, सप्लाई लोकनिर्माण आदि सभी विभागों में, यहाँ तक कि विश्वविद्यालयों, देवस्थानों, न्यायालयों, लोकसेवा आयोगों और भ्रष्टाचार विरोधी विभाग तक में यह हाल है। प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा उठाए गए पत्रों से स्थिति में कुछ सुधार हुआ है। पर अभी जनता के सहयोग की और आवश्यकता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परन्तु ऐसी स्थिति स्पष्ट ही समाज एवं राष्ट्र तथा विश्व के लिए हानिकारक है। और हमें इसे ठीक करना ही होगा। समाज, राष्ट्र एवं विश्व को हमें निरीह से निरीह व्यक्ति के लिए ईमानदारी से जीने योग्य बनाना होगा। राक्षस युग को बदलकर देवयुग नहीं तो मानवयुग तो बनाना ही होगा।

और, इस परिवर्तन का एक ही उपाय है—'संस्कार' अर्थात् 'गुणान्तराधान' सम्परिवर्तन, आमूलपरिवर्तन, पुनर्नवीकरण। 'दशमुख' को 'दशरथ' बनाने तथा बनाये रखने के प्रयोजनों से ही प्राचीन ऋषि, मुनियों ने वैदिक संस्कृति में तथा समाज में संस्कारों की प्रथा डाली थी जो आज दिन तक भी थोड़ी-बहुत प्रचलित हैं। हमें उसे पुनः पूर्णतया जागृत करना होगा। समाज तथा राष्ट्र को राक्षसयुगीन सर्वनाश से बचाने के लिए संस्कार ही एक-मात्र शान्तिपूर्ण उपाय है; 'नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय'। अन्यथा 'रक्तमय-क्रांति' होगी 'महाभारत' मचेगा, जिसका स्वरूप हिंसापूर्ण होगा तथा परिणाम ध्वंसात्मक होगा, सृजनात्मक नहीं।

जातकर्म संस्कारः—

अर्थात्, नवजातशिशु का प्रथम संस्कार। प्रसवक्रिया द्वारा जब शिशु का जन्म होता है तो सर्वप्रथम यही किया जाता है। इसके द्वारा शिशु के जीवन में स्वास्थ्य साद्गुण्य एवं सच्चरित्रता की आधारशिला रखी जाती है। जीवन के इन प्रारम्भिक क्षणों में जो क्रिया की जाती है उससे जहाँ स्वस्थ, सद्गुणी, सच्चरित्र व्यक्ति का निर्माण होगा वहाँ समाज एवं राष्ट्र तथा विश्व भी स्वस्थ, परस्परोपकारी एवं जीवन-स्पृहणीय बनेगा। अर्थात् सुखी स्वस्थ व्यष्टि जीवन तथा आदर्श समाज एवं विश्व बनाने के लिए पहली मूर्त सीढ़ी यह 'जातकर्मसंस्कार' है।

जातकर्मसंस्कार की विधि—

इस संस्कार के पूर्वविधि, उत्तरविधि दो अंग हैं। पूर्वविधि का स्थल प्रसूति-कक्ष होता है तथा उत्तरविधि गृह में सम्पन्न की जाती हैं। पूर्वविधि जन्म-परक होती है तथा उत्तरविधि जन्मोत्तरकालीन।

पूर्वविधि—इसका प्रारम्भ तब से होता है जब गर्भिणी में प्रसवकालीन वास्तविक आवियां प्रारम्भ होती हैं। ऐसी प्रसोष्यमाणा गर्भिणी में बलाधान तथा आश्वासन के लिए अभिमन्त्रित जल का अभ्यासेक किया जाता है।[1] अभिमन्त्रण के लिए पढ़े जाने वाले मन्त्रों से यह प्रार्थना की जाती है कि दश मासों वाला गर्भ तथा संलग्न जरायु (अपरा, Placenta) आवियों द्वारा विचलित होकर निर्बाध-रूप में बाहर निकल आवे, निर्गमन मार्ग में कोई मांस आदि जनित अवरोध न

---

१. 'सोष्यन्तीमद्भिरभ्युक्षति।' (पारस्करगृह्यसूत्र। कां १/कं० १६)। तथा च आश्वलायन-गृह्यसूत्र (१।१४।१-३), गोभिलीयगृह्यसूत्र (२।७।१-१२), शौनकगृह्यसूत्र, प्रभृति।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हो तथा जरायु भी न रुके।[1] प्रसोष्यमाणा गर्भिणी की सुरक्षार्थ भी प्रार्थना की जाती है।[2]

प्रसव द्वारा गर्भ एवं जरायु (अपरा) के बाहर आ जाने पर यदि उल्ब (गर्भावरण) बिना फटे साथ ही निकला हो तो नवजात के मुख-नासा श्वासपथ को स्वच्छ करने के लिए तुरन्त इस उल्ब को फाड़कर पृथक् कर देना अत्यन्त आवश्यक होता है। एतदर्थ सैन्धवमिश्रित घृतका परिषेकार्थ तथा उष्ण जलका प्रक्षालनार्थ उपयोग किया जाता है।[3] तालु-ओष्ठ-कण्ठ-जिह्वा-कर्ण-नेत्र आदि का भी कोष्ण-जल में भीगी रूई की फुरहरी (पिचु) द्वारा शोधन किया जाता है।[4] प्रसूति क्रिया में सिर पर लगे दबाव खरोंच आदि क्लेश निवारणार्थ सिर एवं शिरस्तालु पर बला-तैलका परिषेक किया जाता है।[5] तथा घृताक्त कार्पासपिचु रखकर तर्पण किया जाता है।[6] तदनन्तर नाभिनाल का यथाविधि कर्तन करके कुष्ठतैल लगाकर पट्टी बांधकर तथा उसके सिर के साथ तागा बाँधकर नवजात के गले में शिथिल रूप में अटका दिया जाता है, ताकि उलझे नहीं।[7] फिर बलातैल मलकर क्षीरिवृक्षों आदि के क्वाथ

---

१. (क) 'ओम्। एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह। यथायं वायुरेजति यथा समुद्र एजति। एवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणा सह। (यजु० ८।२८।। पारस्कर। १।१६।१)।

(ख) 'ओम्। अवैतु पृश्निशेवल ँ शुने जरायवत्तवे। नैव मा ँ सेन पीवरी न कस्मिंश्चनायतनमव जरायु पद्यताम्।' (पारस्करगृह्यसूत्र। १।१६।२(चरक। शा० ८।३८)

२. 'क्षितिर्जलं वियत्तेजो वायुर्विष्णु प्रजापतिः। सगर्भां त्वां सदा पान्तु वैशल्यं च दिशन्तु ते।'

३. (क) 'जातमात्रं विशोध्यामात्राद् बालं सैन्धवसर्पिषा। (अ/० हृदय उत्तर १।१)।

(ख) 'अथ जातस्योल्बमपनीय, मुखं च सैन्धवसर्पिषा विशोध्य' (सुश्रुत शारीर १०।१२)।

४. 'अथास्य ताल्वोष्ठ कण्ठ जिह्वा प्रमार्जनमारभेतांगुल्या सुपरिलिखितनखया सुप्रक्षालितोपधानकार्पासपिचुमत्या।' (च। शा।८।४३)।

५. 'प्रसूतिक्लेशितं चानु बलातैलेन सेचयेत्।' (अ० हृ० उ० १।१)।

६. (क) 'प्रथमं प्रमार्जितास्यस्य चास्य शिरस्तालु कार्पासपिचुना स्नेहगर्भेण संछादयेत् (च० शा० ८।४३)।

(ख) 'घृताक्तं मूर्ध्नि पिचुं दद्यात्।' (सुश्रुत शारीर १०।१२)।

७. (क) 'ततो नाभि नाडीमष्टांगुलमायम्य सूत्रेण बद्ध्वा छेदयेत्, तत्सूत्रैकदेशं च कुमारस्य ग्रीवायां सम्यग् बध्नीयात्। (सु शा १०।१२)।

(ख) 'नाभिं च सूत्रेण चतुरंगुलात्। बद्ध्वोर्ध्वं वर्धयित्वा च ग्रीवायामसंजयेत्। (हृ० उ० १।५)।

(ग) 'ततः कल्पनं नाड्याः।···छेदयेत्। तामग्रे सूत्रेणोपनिबध्य कण्ठेऽस्य शिथिलमवसृजेत्। (च० शा० ८।४४)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में सुगन्धित द्रव्य मिलाकर उस द्रव से स्नान कराया जाता है।[1] यह सारी विधि प्रसूतिकक्ष में प्रसाविका चिकित्सिका दाई आदि द्वारा की जाती है।

उत्तरविधि—यह जन्मोत्तर कालीन विधि है तथा इसका स्वरूप पारिवारिक एवं कर्मकाण्ड परक अधिक है। एतदर्थ यथाविधि यज्ञ किया जाता है। अग्न्याधान - समिदाधान - आघारावाज्यभागाहुति- व्याहृति - आज्याहुति, आदि के पश्चात् मुख्याविधि प्रारम्भ होती हैं। प्रारम्भ में घृत आहुति वाले दो[2] मन्त्रों की भावना यह है कि जो टेढ़ी तिरछी विघटनात्मक-अहंकारात्मक-ध्वंसात्मक प्रवृत्तियाँ हुआ करती हैं उनका विनाश होकर सर्वसिद्धिकारी, समाजोपकारी (संराधनी, राधा, साध संसिद्धौ) प्रवृत्तियों का विकास हो तथा नवजात विवेकी (विपश्चित्) बने।

उत्तरविधि की इस प्रारम्भिक प्रक्रिया के बाद 'मधुघृतप्राशन' की क्रिया की जाती है।[3] इसमें मधु घृत का अनुपात २ : १, ३ : १ या ४ : १ का होना चाहिये। साथ में स्वर्ण का योग भी विहित है, उसके तीन प्रकार हैं—प्रथम, स्वर्ण को शलाका द्वारा चटाना, द्वितीय, स्वर्ण के चूर्ण या भस्म या पत्र की अति सूक्ष्म मात्रा मधु घृत में मिलाकर चटाना[4], तृतीय, कसौटी—पत्थर पर मधुघृत मिश्रण रख कर स्वर्ण शलाका से रगड़ना और इस प्रकार मधुघृत मिश्रण में स्वर्ण के कण भी मिल जायें तो उस सपूचे मिश्रण को स्वर्ण शलाका द्वारा चटाना[5]। ब्राह्मीमण्डूकपर्णी-वचा-शखपुष्पी-आमलकी हरीतकी-इन्द्रवारुणी आदि यथालाभ-यथायोग औषध द्रव्यों को भी मधुघृत में मिश्रित करके दिया जाता है।[6] मधुघृत-प्राशन की इस प्रक्रिया का लाभ यह है कि इसमे मेधा, आयु तथा बल की वृद्धि होती है। मन्त्र द्वारा अभिमंत्रित इस मिश्रण का प्राशन कराने पर प्रभावकता और भी बढ़ जाती है।[7] प्रथम तीन दिन

---

१. 'स्नपयेदनु। क्षीरिवृक्षकषायेण सर्वगन्धोदकेन वा। कोष्णेन (अष्टांगहृदय उत्तर १।६)।

२. (क) 'ओम्। या तिरश्ची निपद्यते अहं विधरणी इति। तां त्वा घृतस्य धारया यजे संराधनीमहम। संराधिन्यै देव्यै देष्ट्र्यै स्वाहा। इदं संराधिन्यै इदन्न मम।' (सामसन्त्र ब्राह्मण १।५।६)।

(ख) 'ओम्। विपश्चित् पुच्छमभरत्त धाता पुनराहरत्। परे हि त्वां विपश्चित्पुमानय जनिष्यतेऽसौ नाम स्वाहा। इदं धात्रे इदन्न मम (साममंत्रब्राह्मण १।५।७)।

३. 'अतोऽनन्तरं जातकर्म कुमारस्य कार्यम्। तद्यथा—मधुसर्पिषी मन्त्रोपमन्त्रिते यथाम्नायं प्रथमं प्राशितुं दद्यात्।' (चरक। शारीर। ८।४६)।

४. 'अथ कुमारं शीताभिरद्भिराश्वास्य जातकर्माणि कृते मधुसर्पिरनन्तचूर्णं इति उल्हणः अगुल्याऽनाभिकया लेहयेत्।' (सुश्रुत। शरीर। १०।१३)

५. 'कुमारं जातं पुराऽन्यैरालम्भात् सर्पिर्मधुनी हिरण्य निकाषं हिरण्येन प्राशयेत्।' (सुवर्ण चूर्ण, आश्व० गृ० सू० १।१५।१)

६. प्राश्यं चास्य प्रयोजयेत्। हरेणुमात्रं मेधाऽऽयुर्बलार्थमभिमन्त्रितम्॥ ऐन्द्रीब्राह्मी-वचांशंखपुष्पीकल्कं घृतं मधु। चाभीकरवचाब्राह्मीताथपथ्या रजीकृताः॥ लिह्यान्मधुघृतोपेता हेमधात्रीरजोऽथवा। (अष्टांगहृदय उत्तर १।८-१०)

७. 'मेधाऽऽयुर्बलार्थमभिमन्त्रितम्।' (अ० हृ० उत्तर १।८)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तक प्रसूता को दूध नहीं उतरता या दूषित एवं अपर्याप्त होता है अतः स्तन्य के अभाव में इस प्रक्रिया से नवजात को पोषण भी मिलता है।[1] साथ ही गर्भावस्था प्राप्त दोषों का तिर्हरण एवं प्रतिकार भी होता है।

प्राशन की क्रिया यह है कि सर्वप्रथम मधुघृत मिश्रण (स्वर्ण एवं ब्राह्मी आदि के योग से युक्त अथवा रहित) में से स्वर्ण शलाका को भिगोकर शिशु की जिह्वा पर 'ओम्' यह अक्षर लिखना तथा शिशु के दांये कान में 'वेदोऽसि' (अर्थात् तेरी संज्ञा 'वेद' है और वेदरूप एवं ज्ञानमय तुझे बनना होगा) सुनाना और सात प्राशन मंत्रों से अभिमन्त्रित करके इस मिश्रण को यथाविधि चटाना। प्रथम[2] मन्त्र में जहाँ 'वेद' 'सविता', 'मघवा', देवता आदि शब्दों द्वारा विश्वज्ञाता, विश्वकर्त्ता, विश्वधर्ता, विश्व-वन्द्य विश्वशक्ति आदि सर्वोच्च भावनाओं का निवेश है तथा मधु एवं घृत की सर्वोत्कृष्ट पौष्टिकता का निर्देश है वहाँ शिशु के सुरक्षापूर्ण दिव्यतापूर्ण शतायु होने की कामना भी की गई है। साथ हो 'देवता' शब्द द्वारा दिव्यता बनी रहने की भी भावना अभिप्रेत हैं।

मधुघृत प्राशन के द्वितीय मन्त्र[3] द्वारा मित्रावरुणौ अग्नि-अश्विनौ देवों से प्रार्थना की गई है कि वे नवजात शिशु को मधुघृत के माध्यम से विश्वमैत्री, सर्व-प्रियता - विवेक -विज्ञान -अदम्यता - स्वास्थ्य -सौन्दर्यपूर्ण, सद्बुद्धि (मेधा) प्रदान करें। तृतीय[4] मन्त्र द्वारा विशाल पृथिवी (पृथु विस्तारे) के समान दृढ़ता एवं विश्वधर्तृत्व-गुण का आधान[5] करने की बात कही गई है। चतुर्थ मन्त्र[6] द्वारा भुवः' अर्थात् शुभ-कर्ममय एवं विश्व कल्याण यज्ञमय जीवन बनाने[7] की बात कही गई है। पंचम[8] मंत्र

---

१. (क) 'प्रसूतितः ॥ तृतीयेऽह्नि चतुर्थे वा स्त्रीणां स्तन्यं प्रवर्तते।'
(अ० हृ०। उत्तर। १।१।१२)
(ख) 'यत एवं दिनत्रिचतुर्मात्रं क्षीराभावस्तस्माद्धेतो।'
(अरुणदत्त टीका। हृ०। उ०। १।१२)

२. 'ओम्। प्र ते ददामि मधुनो घृतस्य वेद सवित्रा प्रसूतं मघोनाम्। आयुष्मान् गुप्तो देवताभिः शतं जीव शरदो लोके अस्मिन् ॥'
(आश्वलायनगृह्यसूत्र। १।१५।१)

३. मेधां ते मित्रावरुणौ मेधामग्निर्दधातु ते। मेधां ते अश्विनौ देवावाधत्ताम् पुष्करस्रजौ ॥' (गोभिलीय-गृह्यसूत्र। २।७।२१)

४. 'ओम्। भूस्त्वयि दधामि।' (पा० १।१६।४)

५. 'भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री। पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृंह पृथिवीं मा हिंसीः।' (यजुर्वेद। १३।१८)

६. 'ओम्। भुवस्त्वयि दधामि।' (पारस्कर १।१६।४)

७. 'भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः। दिवि मूर्धानम् दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥' (यजुर्वेद। १३।१५)

८. 'ओम्। स्वस्त्वयि दधामि।' (पारस्कर गृह्यसूत्र १।१६।४)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

द्वारा 'स्वः' अर्थात् ज्योति-दीप्ति-शुचिता (शुक्र) आदि सूर्य गुणों[1] को धारण करने के लिए कहा गया है। छठे[2] मन्त्र द्वारा पुनः भूः भुवः स्वः तीनों के समग्र उपकारी गुणों को समग्रशः विकसित करने का मन्त्र दिया गया है। और सातवें[3] मन्त्र द्वारा पुनः 'मेधा' या सद्बुद्धि के विकास का उपदेश दिया गया है जिसके साथ लोकवन्द्यता (सदसस्पति) अद्वितीयता - अनुपमेयता - अनोखापन - विश्वप्रियता - परमैश्वर्य (इन्द्र) 'इदि परमैश्वर्ये' लौकिक-पारलौकिक, भौतिक, सामाजिक, मानसिक, आत्मिक, समग्रैश्वर्य), सर्वकाम्यता-विवेक (सनि', 'वन षण सम्भक्तौ') आदि उपादेय गुणों एवं शक्तियों के विकास की एवं तद्द्वारा लोकोपकार की भावनायें जुड़ी हुई हैं। इन विशेषताओं का आंशिक भी विकास करने वाला व्यक्ति जहाँ स्वय स्वस्थ रहता है वहाँ समाज, राष्ट्र एवं विश्व का भी कल्याण करता है। नवजात शिशु को ऐसे कल्याण पुरुष के ढांचे में ढालना ही इस संस्कार का प्रयोजन है; इसीलिये आयुर्वेद में भी जातकर्मसंस्कार करने का आदेश है।[4]

जातकर्म संस्कार की उत्तरविधि की दूसरी क्रिया, मधुघृत प्राशन के बाद तीसरी क्रिया है 'यवोदकबिन्दुषेचन' की। इसका विधान केवल गोभिलीयगृह्यसूत्र (२।७।१९) में ही किया गया है। यव मूत्रल, दोषहर तथा जीवनीय है। एतदर्थ यव (जौ) को शुद्ध करके स्वच्छ जल से पीसकर स्वच्छ वस्त्र द्वारा छानकर स्वच्छ पात्र में रखें और मन्त्र से अभिमन्त्रित करके अंगूठे तथा अनामिका द्वारा एक दो बूंद यवोदक शिशु के मुख में टपका दें। रुई द्वारा या ड्रापर द्वारा भी टपका सकते हैं। अभिमन्त्रण के इस मन्त्र में यह कहा गया है कि यह यवोदक स्वस्थ आयु एवं जीवन प्रदान करने वाला अमृतमय अन्न है तथा रूप कांति एवं गति प्रदान करने वाला 'आज्य' (आञ्ज्यतेऽनेनेति आज्यम्) 'अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु' है।[5] स्तन्य मिलने से पहले के ३-४ दिन तक शिशु को आजकल जल में घोलकर ग्लूकोज अथवा यवशर्करा देने की जो प्रथा है उसका प्रयोजन भी शिशु को जीवन एव शक्ति प्रदान करना ही है और वह 'यवोदकबिन्दुषेचन' का ही एक अनभिमन्त्रित आधुनिक रूप है।

---

१. 'स्वर्ण घर्मः स्वाहा स्वर्णार्कः स्वाहा स्वर्ण शुक्रः स्वाहा स्वर्ण ज्योतिः स्वाहा स्वर्ण सूर्यः स्वाहा।' (यजुर्वेद। १८।५०)

२. 'ओम्। भूर्भुवः स्वस्सर्वं त्वयि दधामि॥' (पारस्कर गृह्यसूत्र १।१६।४)

३. 'ओम्। सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। सनिं मेधामयासिषं स्वाहा॥' (ऋग्वेद।१।१८।६॥ गोभिलीय गृ० सू०।२।७।१९-२२)

४. (क) 'प्राजापत्येन विधिना जातकर्माणि कारयेत्।' (अष्टांगहृदय। उत्तर। १।११)

(ख) 'ततो जातकर्माणि वेदविहितानि प्राजापत्येन गृह्योक्तेन विधिना भिषक् कारयेत्।' (अरुणदत्तटीका। अष्टांगहृदय। उत्तर।१।११)

५. (क) 'ओम्। इदमाज्यमिदमन्नमिदमायुरिदममृतम्।' (गोभिलीय गृ० सूत्र २।७।१९)

(ख) 'ओम्। इदमन्नमिदमायुरिदममृतम्।' (साममन्त्रब्राह्मण १।५।८)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चौथी क्रिया 'मन्त्रोद्‌बोधन' या 'मन्त्रोपदेश' की है, जिसमें विविध मन्त्रों द्वारा शिशु की शक्तियों का उद्‌बोधन किया जाता है तथा विविध आदर्शों के अनुरूप शिशु का जीवन ढालने के लिए कामना की जाती है। इस क्रिया के दो खंड हैं—प्रथम खंड में नौ मन्त्रों का जाप पहले तो शिशु के दाहिने कान मे किया जाता है फिर बाँये कान में। द्वितीय खंड में शिशु के कन्धे पर मृदुतापूर्वक हाथ रखकर पहले तो तीन मन्त्रों का उच्चारण किया जाता है तथा फिर चौथे मन्त्र का तीन बार जाप।

चौथी क्रिया के प्रथम खंड में पढ़े जपे जाने वाले नौ मन्त्रों में शिशु के लिए शुद्ध विवेक बुद्धि 'मेधा' के वास्ते तथा दीर्घ स्वस्थ कल्याणमय जीवन के वास्ते प्रार्थना की गई है। यहाँ 'जप' या 'जाप' का शुद्ध अर्थ समझ लेना आवश्यक है। सामान्यत: लोग किसी अक्षर, शब्द, वाक्य या मन्त्र को बिना समझे निरर्थक ही बार-बार उसकी आवृत्ति करने बोलने की क्रिया को ही 'जप' समझते हैं तथा आवृत्ति गणना के लिए उपयोग में आने वाले मनकों की माला को 'जपनी' कहते हैं। परन्तु 'जप' का यह अर्थ या भाव ठीक नहीं है। वस्तुत: यह शब्द 'जप मानसे च' (भ्वा० प० से०) धातु से बना है, अतः इसका अर्थ बनेगा 'अर्थभावन' 'तज्जपस्तदर्थभावनम्'—योग-दर्शन। अर्थात् अर्थ को सम्यक्तया समझकर मन में ध्यानपूर्वक सत्यापन, मानस चित्रण तथा अनुकरण। प्रस्तुत सन्दर्भ में, 'मन्त्रोद्‌बोधन' क्रिया के प्रथम नौ मन्त्रों का अर्थ सम्यक्तया समझकर तथा सबको समझाकर उस अर्थ का मन में ध्यान करते हुए उच्चारण करना तथा इस प्रकार उद्‌बोधन प्राप्त करना एवं प्राप्त कराना। स्पष्ट है कि मुख द्वारा उच्चारण के साथ-साथ मन में अर्थभावन एवं मानस शक्ति सम्प्रेषण के द्वारा शिशु के जीवन में उद्‌बोधन लाना अभिप्रेत है।

चौथी क्रिया (मन्त्रोद्‌बोधन) के प्रथम खण्ड में मन्त्र-उच्चारण प्रथम तो शिशु के दाहिने कान में किया जाता है फिर बाँये कान में। नौ मन्त्रों में से प्रथम मन्त्र[1] द्वारा विश्वोत्पादक देव परमपिता परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि वे शिशु को सदसद्-विवेकमयी बुद्धि तथा स्वस्थ सृजनात्मक मेधा प्रदान करें, ज्ञान एवं कला की अधि-ष्ठात्री देवी से शिशु के लिये सत्यं-शिवं-सुन्दर गुणों वाली मेधा की प्रार्थना की गई है तथा लक्ष्मीमण्डित एवं स्वास्थ्य सौन्दर्यपूर्ण देवभिषज्ञों अश्वियुग्मदेवों से शिशु के लिए भौतिक - मानसिक - आत्मिक - स्वास्थ्य - सौन्दर्य वाली मेधा की कामना की गई है।

द्वितीय से नवम तक आठ मन्त्रों द्वारा विविध गुणयुक्त आदर्श जीवन बनाने की बात कही गई है। द्वितीय[2] मन्त्र में आदर्श जीवन का स्रोत तथा प्रतिमान अग्नि

---

१. 'ओम्। मेधां ते देवः सविता मेधां देवी सरस्वती। मेधां ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ॥' (आश्व० गृ० सू० ।१।१५।२)

२. 'ओम्। अग्निरायुष्मान् स वनस्पतिभिरायुष्मांस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि॥' (पारस्कर० ।१।१६।६)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है जो स्वयं तो आयुष्मान् एवं शाश्वत है ही परन्तु वनस्पतियों[1] काष्ठादिकों से वह दीप्त एवं आयुष्मान् होता है, अतः भाव निकलेगा कि अन्नादि खाद्य पेय द्रव्यों से कार्याग्नि का पोषण प्राप्त करके तथा अग्नि सदृश तेजस्वी गुणों का उपार्जन करके शिशु को आदर्श जीवन बनाना होगा। निस्तेज एवं निवल दीर्घायु निरर्थक वल्कि असम्भव है।

तृतीय[2] मन्त्र में औषधिराज सोम[3] से आदर्श प्राप्त करना कहा है। 'ओषधि' उसे कहते हैं जो फल पक जाने पर सूख जाती हो[4] यथा—गेहूँ आदि, इनसे शरीर को बल पोषण मिलता है। आमलाहरीतकी गुडूची आदि द्रव्य भी ओषहर रोगनाशक होने से औषधि कहाते हैं। 'चन्द्र' या 'चन्द्रमा' (सोम) जिसका गुण 'आह्लाद'[5] एवं 'आह्लादकारक'[6] है, वह इन गुणों का विकास ओषधियों के द्वारा करता है तथा उससे भी इन औषधियों को बल प्राप्त होता है, अतः वह 'ओषधीश' (विधुः सुधांशुः शुभ्रांशुरोषधीशो निशापतिः।' अमर० । १ । ३ । १४) कहाता है। दूसरी ओर सुश्रुतसंहिता (चिकित्सा० । अ० २९) में वर्णित 'सोम'[7] रसायन ओषधियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान रखने के कारण 'ओषधिपति'[8] कहाता है, चन्द्रमा से उसकी श्रीवृद्धि होती है शुक्ल पक्ष की एक एक चन्द्रकला से उसका एक एक पत्र बढ़ता जाता है ओर पौर्णमासी की रात्रि में पूरे १५ पत्र हो जाते हैं तथा कृष्णपक्ष में प्रतिरात्रि एक-एक पत्र झड़कर अमावस्या में लतामात्र पत्रहीनावस्था हो जाती है।[9] तीसरी

---

१. (क) 'तैरपुष्पाद्वनस्पतिः'। (अमर २ । ४ । ६)
(ख) 'अपुष्पाः (अदृश्यपुष्पाः) फलवन्तो वनस्पतयः।'
(सुश्रुत । सूत्र । १।२९) यथा उदुम्बरादयः।

२. 'ओम्। सोम आयुष्मान् स ओषधीभिरायुष्माँस्तेन त्वायुषायुष्मन्तं करोमि ॥'
(पार० । १ । १६ । ६)

३. 'सोमस्त्वोषधीतद्रसेन्दुषु। दिव्यौषध्यां घनसारे समीरे पितृदैवते ॥ वसुप्रभेदे सलिले वानरे किन्नरेश्वरे।' इति हैमः।

४. 'फलपाकनिष्ठा ओषधयः।' (सु० सूत्र । १ । २९)

५. (क) 'चन्दति चन्दयति वेति चन्द्रः।' (चदि आह्लादने' धातोः 'स्फायितञ्चि०' इति रक्)
(ख) 'चन्द्र इवापरः। प्रह्लादयति भूतानां मनांसि' (सुश्रुतां चिकित्सा २९ । १८)

६. चन्द्रम् आह्लादं मिमीते निर्मिमीते इति चन्द्रमाः।'
(रामाश्रमीटीका । अमर० । १।३।१३)

७. 'ब्रह्मादयोऽसृजन् पूर्वममृतं सोमसंज्ञितम्। जरामृत्युविनाशाय—॥'
(सुश्रुत । चिकि० । २९ । ३)

८. ओषधीनां पतिं सोममुपयुज्य विचक्षणः।' (सुश्रुत । चिकि० २९।१४)

९. 'एकैकं जायते पत्रं सोमस्याहरहस्तदा। शुक्लस्य पौर्णमास्यां तु भवेत्पंचदशच्छदः ॥ शीर्यते पत्रमेकैकं दिवसे दिवसे पुनः। कृष्णपक्षक्षये चापि लता भवति केवला ॥' (सु० । चि० । २९।२१-२२)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओर, 'सोम' का तृतीय अर्थ है, 'प्रसवशक्ति'[1] जिसकी उत्कृष्टता रसायन वाजीकरण ओषधियों के द्वारा सम्पन्न होती है।[2] अस्तु, शिशु को चन्द्रमा से आह्लाद, 'सोम' ओषधि से रसायन प्रभाव तथा गृहस्थावस्था में वाजीकरणौषध विकसित सबलसत्पुत्रोत्पादन शक्ति को प्राप्त करते हुए सौम्य सुखद कल्याणप्रद दीर्घायु प्राप्त करनी होगी।

चतुर्थ[3] मन्त्र में जीवन का आदर्श एवं प्रतिमान 'ब्रह्म' निर्दिष्ट है। 'ब्रह्म' का अर्थ है, सर्वोत्पादक, सर्वशक्तिमान्, महत्तम भाव अर्थात् परमात्मा ('बृहि वृद्धौ', बृहति वर्धयति प्रजा इति ब्रह्म', 'योऽखिलं जगन्निर्माणेन बृंहति वर्धयति स ब्रह्म', 'बृहन्ति वर्धत इति वा', 'सर्वेभ्यो बृहत्त्वाद् ब्रह्म)। ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण रखते हुये कर्मठ[4] बनने से तथा ईश्वर के नियमों का पालन करने से आदर्श जीवन दीर्घायु की प्राप्ति होगी यही 'ब्राह्मणत्व' स्थिति है जो 'ब्रह्म' में दृढ़ विश्वास एवं पूर्णसमर्पण की भावना को बढ़ाती है। दूसरी ओर, 'ब्रह्म' वेद (अर्थात्, शाश्वत अपौरुषेय ज्ञान) को भी कहते हैं और वेदाध्यायी, वेदानुयायी, ब्रह्मज्ञानी 'ब्राह्मण' ('ब्रह्म वेदानधीते इति ब्राह्मणः', 'तदधीते तद्वेद' इत्यण। यद्वा, 'ब्रह्म परमेश्वरं वेदान् वा जानाति इति ब्राह्मणः') कहता है, जो ब्रह्मज्ञान-वेदज्ञान को पढ़ता-पढ़ाता-फैलाता-बढ़ाता है। अतः इस मन्त्र के द्वारा 'ब्रह्म' अर्थात् 'ईश्वर' के प्रति पूर्णसमर्पण-युक्त कर्मठता की तथा शाश्वत-अपौरुषेय वेदज्ञान के अनुगमन की शिक्षा दी गयी है जिससे आदर्श जीवन एवं स्वस्थ दीर्घायु की प्राप्ति होगी।

पाँचवें[5] मन्त्र में उत्तम जीवन एवं दीर्घायु के स्रोत एवं प्रतिमान 'देवाः' (अर्थात्, दिव्यगुणयुक्त व्यक्ति, भाव या शक्तियाँ। 'दीव्यन्तीति देवाः'; 'दिवु क्रीडाविजिगीषा व्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु') बताये हैं, जिनकी शक्तिःवृद्धि अमृत[6] तत्त्व से होती हैं। उनके अनुकरण पर जीवनादर्श एवं दीर्घायु की प्राप्ति के लिए जीवन में दिव्यगुणों का एवं अमृत तत्त्व-आत्मबल ('अहमिन्द्रो न पराजिग्य इद् धनं न मृत्यवेऽव तस्थे कदाचन।'—ऋग्वेद ।१०।४८।५) का विकास करना होगा।

---

१. 'सुनोति सूते वा उत्पादयतीति सोमः।' ('षुञ् अभिषवे', 'षूङ् प्राणिगर्भविमोचने' च)।

२. 'वाजीकरणमन्विच्छेत् पुरुषो नित्यमात्मवान्। ···पुत्रस्यायतनं ह्येतद्···।।' (च० । चि० । २ । १ । ३-४)

३. 'ओम्। ब्रह्म आयुष्मत् तद् ब्राह्मणैरायुष्मत्तेन त्वायुषायुष्मन्तं करोमि।।' (पारस्कर । १ । १६ । ६)

४. 'अहं दां गृणते पूर्व्यं वस्वहं ब्रह्म कृणवं मह्यं वर्धनम्। अहं भुवं यजमानस्य चोदिताऽयज्वनः साक्षि विश्वस्मिन् भरे।।' (ऋग्वेद । १०।४९।१)

५. 'ओम्। देवा आयुष्मन्तस्तेऽमृतेनायुष्मन्तस्तेन त्वायुषायुष्मन्तं करोमि।।' (पार० ।१।१६।६)

६. 'न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्ति एतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति।।' (छान्दोग्य० ३.६.१; ३.७.१ आदि)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

छठे[1] मन्त्र में उत्तम जीवन एवं दीर्घायु के स्रोत एवं प्रतिमान 'ऋषि' कहे है। 'ऋषि' का अर्थ है, 'ज्ञाता' ('ऋषन्ति जानन्तीति ऋषयः' ऋषी गतौ'), अथवा क्रान्तदर्शी-सत्यवती आप्त[2] पुरुष, यद्वा 'द्रष्टा'-मन्त्रद्रष्टा'[3]। ऋषियों की क्रान्तदर्शी दृष्टि एवं आप्तता-रूपी आयु का रहस्य निहित होता है उनके द्वारा दृढ़ सहजता के साथ पाले हुए यम (अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह)[4] नियमों (पवित्रता-सन्तोष-कष्टसेवन- स्वाध्याय-ईश्वरप्रणिधान)[5] के व्रतों में। अतः शिशु से कहा जा रहा है कि उसे यम-नियम-व्रतों के पालन द्वारा अपने जीवन में ऋषित्व लाना होगा।

सातवें[6] मन्त्र में उत्तम जीवन के लिए उदाहरण एवं प्रतिमान बताया है 'पितरों'-पुरखाओं-पूर्वपुरुषों को, जिनके अनुकरणीय गुणों का विकास हुआ होता है उनकी 'स्वधा' अर्थात् दिव्यहवियों[7] अर्थात् उत्तम कर्मों से। अतः शिशु को शिक्षा दी जा रही है कि उसे जीवन में उत्तम कर्म करके पूर्वपुरुषों के उत्तम गुणों का विकास एवं अनुवर्तन (Hereditny conveyance in well developed form) तथा परिवर्धन करना होगा। सद्गुणी पूर्वपुरुषों के जीवनादर्शों के अनुकरण एवं अनुवर्तन की शिक्षा इस सातवें मन्त्र में दी गयी है।

आठवें[8] मन्त्र में उत्तम जीवन का आदर्श साधन 'यज्ञ' बताया गया है, जिसकी श्रीवृद्धि 'दक्षिणा' से होती है। 'यज्ञ' का अर्थ है—दिव्यगुणवाले महापुरुषों की पूजा, उनका सत्संग तथा दिव्यगुणों की वृद्धि के लिए यथायोग्य हविका दान (इज्यते अनेन वा अत्र वा इति यज्ञः' 'यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु)। नैष्ठिक क्षेत्र में यज्ञ के पाँच प्रकार हैं—'ब्रह्मयज्ञ' (सन्ध्योपासन एवं अध्यापन; 'अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः'—मनुस्मृति ३.७०) 'देवयज्ञ' अर्थात् अग्निहोत्र; 'अतिथियज्ञ' अर्थात् अतिथिसेवा, 'पितृयज्ञ' अर्थात् माता-पिता पूज्य वृद्ध आदि की सेवा; तथा 'वलिवैश्व-देवयज्ञ' अर्थात् प्राणिमात्र का यथाशक्ति भरण-पोषण। ये पाँच प्रकार वस्तुतः पाँच

---

१. 'ओम्। ऋषय आयुष्मन्तस्ते व्रतैरायुष्मन्तस्तेन त्वायुषायुष्मन्तं करोमि ॥'
(पारस्कर० १।१६।६)

२. 'ऋषयः सत्यवचसः' (अमर० ।२।७।४३) —सत्यव्रतिनः, आप्ताः इत्यर्थः ॥ आप्ता— 'रजस्तमोभ्याम् निर्मुक्तास्तपोज्ञान बलेन ये। येषां त्रिकालममलं ज्ञानमव्याहतं सदा ॥ आप्ताः शिष्टा विबुद्धास्ते तेषां ज्ञानमसंशयम्। सत्यं, वक्ष्यन्ति ते कस्मादसत्यं नीरजस्तमाः ॥' (चरक। सूत्र० ।११।१८-१९)।

३. ऋषयो मन्त्रदृष्टयो मन्त्रान्सम्प्रादुः' निरुक्त १.२०॥ 'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः।'

४-५ 'तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः' 'शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः।' (योग०। साधन। ३०, ३२।)

६. 'ओम्। पितर आयुष्मन्तस्ते स्वधाभिरायुष्मन्तस्तेन०' (पार० १।१६।६)।

७. 'स्वाहा देवहविर्दाने श्रौषड् वौषड् वषट् स्वधा।' (अमर० ।३।४।)।
(देवहविर्दाने)

८. 'ओम्। यज्ञ आयुष्मान् स दक्षिणाभिरायुष्मांस्तेन त्वायुषायुष्मन्तं करोमि।' (पार० १।१६।६)।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

'महायज्ञ' हैं जिनका अनुष्ठान प्रत्येक गृहस्थ को प्रतिदिन करना चाहिये—यह शिक्षा शिशु को दी जारही है। इन यज्ञों का लाभ यह है कि बड़े-बूढ़ों-दिव्य पुरुषों-अतिथियों आदि का तो यथायोग्य पूजन-अर्चन-पालन होता ही है, परन्तु समाज के नगण्य से नगण्य व्यक्ति भृत्य, निर्धन निर्बल, आतुर आदि के अतिरिक्त कीट पशु, पक्षी आदि का भी यथा शक्ति भरण-पोषण होता रहना है, जिससे सम्पत्ति. सुख, सुविधा, योग, क्षेत्र, आदि की विषमता समाज में रह ही नहीं सकती। लूट, पाट, चोरी, कलह, युद्ध आदि क्यों होंगे ? व्यावहारिक क्षेत में यज्ञ का अर्थ है—कर्मठता; सो भी निष्काम कर्म करना। 'दक्षिणा' से यह ध्वनि भी प्राप्त होती है कि दक्षता पूर्वक निष्काम कर्म करना चाहिये। शिशु को इसकी शिक्षा दी जा रही है। इस सबसे जहाँ उसका जीवन उत्तम आदर्श बनेगा वहाँ समाज एवं विश्व भी अव्यवस्था एवं विशृंखला से रहित तथा स्वर्गोपम बनेगा। राक्षसयुग नहीं रह सकता।

जातकर्मसंस्कार की उत्तरविधि की चौथी क्रिया, मन्त्रोद्बोधन, के नौवें[1] मन्त्र में उत्तम जीवन का प्रतिमान या आदर्श 'समुद्र' को बताया गया है, जिसमें नदियां आकर अपना जल निरन्तर उँड़ेलती रहती हैं परन्तु फिर भी जिसमें कोई बाढ़ नहीं आती। न तो सूर्य द्वारा इसका जल निरन्तर वाष्पीभूत होते रहने के कारण घटता है, नाहीं नदियों के जल या बाढ़ से भी बढ़ता है—यह सदा मर्यादा में ही बना रहता है, इसीलिए इसे 'समुद्र' कहते हैं।[2] समुद्र वस्तुत, विशालता मर्यादा एवं गम्भीरता का प्रतीक है, तथा इतने पर भी है अमूल्य रत्नों एवं सम्पत्ति की खान (रत्नाकर-जिसे मथकर देवों-असुरों ने चौदह महार्घ रत्न प्राप्त किये थे)। इन्हीं गुणों के विकास की शिक्षा शिशु को दी जा रही है।

जातकर्मसंस्कार की उत्तर विधि में 'मन्त्रोद्बोधन' नामक चौथी क्रिया के इस प्रथम खण्ड में जो नौ मन्त्र शिशु के पहले तो दायें कान में तथा फिर बायें कान में जप पूर्वक उच्चारण किये गए हैं, उनमें केन्द्रीय तत्व है 'आयुष्मत्ता' अर्थात् 'जीवन'। अच्छे जीवन के प्रतिमान या आदर्श के रूप में नौ विशेष भावों या तत्वों को बताकर तथा उनमें से प्रत्येक को एक-एक सहवर्ती या प्रवर्धक या उद्वेजक तत्व बताकर शिशु को शिक्षा दी गई है कि वह जीवन में प्रत्येक ऐसे प्रतिमान या आदर्श के अनुरूप अपने को ढाले। इस आदर्श अनुकरण का लाभ यह होगा कि जहाँ उसका अपना जीवन उत्तम बनेगा वहाँ समाज भी आदर्श एवं स्वर्गोपम होगा। ऊपर की यथास्थान व्याख्या से यह सुस्पष्ट है।

'मन्त्रोदबोधन'—क्रिया के द्वितीय खण्ड में चार मन्त्रों का पाठ किया जाता है। पाठ के समय शिशु के कन्धों पर मृदुतापूर्वक हाथ रखना होता है, जिसके प्रयोजन हैं—निर्देशन, सान्त्वन, उद्वेजन एवम् उत्साहन।[3] प्रथम मन्त्र द्वारा 'इन्द्र' अर्थात्

---

१. ओम्। समुद्र आयुष्मान् स स्रवन्तीभिरायुष्मांस्तेन त्वामुषायुष्मन्तं करोमि।' (पार १।१६।६)।

२. 'सह मुद्रया मर्यादया वर्तते इति समुद्रः। (रामाश्रयीटीका। अमरकोष। १।१०।१)।

३. ओम्। इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे। पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम्। (ऋग्वेद २।२१।६)।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परमैश्वर्यवान् परमेश्वर (य इन्दति परमैश्वर्यवान् भवति स इन्द्रः परमेश्वरः; इदि परमैश्वर्यें) से प्रार्थना की गई है कि वे शिशु को जीवन में निम्नलिखित विशेषताएं एवं सुविधाएं प्रदान करें; तद्यथा—श्रेष्ठ धन (काला धन नहीं) कर्मदक्षता पूर्ण ज्ञान, सौभाग्य[1] अन्न धन आदि द्वारा उत्तम पोषण, शरीर-मन की निष्कलुषता नीरोगता, सत्य माधुर्य-पूर्ण वाणी तथा सत्कर्म सुफल वाले सफलतापूर्ण दिन। इन सब न्यामतों का लाभ न केवल शिशु को मिलेगा अपितु सुष्ठुव्यष्टि-निर्मित समष्टि को भी प्राप्त होगा।

'मन्त्रोद्बोधन'—द्वितीयखण्ड के द्वितीय[2] मन्त्र में परमेश्वर से शिशु के लिए कुछ और भी न्यामतों की प्रार्थना की गयी है। परमेश्वर को संबोधित करने के लिए यहाँ तीन शब्द प्रयुक्त किये गए हैं—इन्द्र, मघवन तथा ऋजीषिन्। 'इन्द्र' का अर्थ है, परमैश्वर्यवान् परमेश्वर। 'मघवा' (मह्यते पूज्यते इति मघवा'; मह पूजायाम्) का अर्थ है, पूज्यतम परमेश्वर। 'ऋजीषी' शब्द अर्ज अर्जने'—धातुसे बना है अतः इसका अर्थ बनेगा, सत्य, धर्म, न्याय, पूर्ण कमाई सज्जनों से करवाने वाला परमेश्वर परमेश्वर को इन नामों से सम्बोधित करने से ध्वनि यह निकलती है कि शिशु को अपने जीवन में इन गुणों का विकास करना चाहिए। अस्तु, इस मन्त्र द्वारा परमेश्वर से शिशु के लिए निम्नलिखित के वास्ते प्रार्थना की जा रही है—समाज एवं विश्व की सेवा में अर्पित करने के बाद अवशिष्ट प्रभूत परन्तु नियंत्रित दानपूत धन (रायः= धनम्। 'रा दाने' धातु से बने 'राय' शब्दों में ध्वनि यह है कि वह धन दान देने से बचा अर्थात् 'दानपूत' होना चाहिए. 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।' —यजुर्वेद ४०.१) शताधिक वर्षों वाला जीवट पूर्ण जीवन, तथा दीर्घायु वाली सुवीर यशस्वी मनस्वी सन्तान। इन न्यामतों में व्यष्टि-समष्टि दोनों उत्कृष्ट हित निहित है।

'मन्त्रोद्बोधन'—द्वितीय खण्ड के तृतीय[3] मन्त्र में शिशु को सम्बोधित करके चार महत्वपूर्ण शिक्षाएँ दी गयी हैं—(क) चरित्र क्लेशसहन एवं सत्यसिद्धान्त के

---

१. सौभाग्य—सुभगत्व, सुभगता। 'भग' के छह अर्थ सामूहिक रूप में हैं—समग्र लौकिक पारलौकिक, भौतिक, कायिक, मानसिक, आत्मिक ऐश्वर्य, शूरता, यश लक्ष्मी, वैराग्य एवं ज्ञान (ऐश्वर्यस्य समग्रस्य शौर्यस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णाम् भग इतींगना)। इनका उत्कृष्ट रूप ही सुभगत्व (सौभाग्य) कहाता है।

२. 'ओम्। अस्मे प्रयन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः। अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन्। (ऋग्वेद ३।३६।१०)।

३. 'ओम। अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव वेदो वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम्।' साममंत्रब्राह्मण।१।१५।८। आश्व० १।१५।३)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लिए तू पाषाणशिला के समान दृढ़ एवं कठोर बनना।[1] (ख) पाप एवं दुष्टता के विनाशार्थ तू परशु के समान बनना; (ग) अपने साद्गुण्य एवं सदाचार के द्वारा तू ठोस कुन्दन (हिरण्यमस्तृतं) के समान बनना; और (घ) तेरा नाम 'वेद' है, अतः तू शाश्वत अपौरुषेय वेदज्ञान का तथा तदनुगामी तदविरोधी ज्ञान विज्ञान का भण्डार बनना। ये चार शिक्षाएँ देकर शिशु को आशीर्वाद दिया जा रहा है कि इन विशेषताओं से युक्त होकर तू शताधिकजीवी हो।

'मन्त्रोद्बोधन'—द्वितीय खण्ड के चतुर्थ[2] मन्त्र का तीन बार जप (तज्जपस्त-दर्थभावनम्) मानसशक्तिसम्प्रेषण पूर्वक करने का विधान है। इस मंत्र में तीन सौ वर्ष की सुखायु की कामना शिशु के लिए की गयी है। इसमें प्रतिमान या आदर्श दिव्यगुण सदाचारी देवों का है, जिनकी तीनसौ वर्ष की आयु कही है। यह कामना की गई है कि शिशु के भी दिव्य गुणों का विकास होकर तीन सौ वर्ष की आयु बने। और इस दीर्घायु में भी प्रत्येक इन्द्रिय भी यथावत् कार्य करे, विशेषतः ज्ञानेन्द्रियः इसलिए कहा है कि—'जमदग्नि' अर्थात् नेत्रों (चक्षुर्वै जमदग्निः—शतपथब्राह्मण) में दृष्टिशक्ति तीनसौ वर्ष तक स्वस्थ बनी रहे, तथा 'कश्यप' अर्थात् 'इन्द्रियग्राम' (पश्यतीति पश्यः पश्य एवं पश्यकः' पश्यक एव कश्यपः, आद्यन्तविपर्ययात्; 'कश्यपः कस्मात्, पश्यको भवतीति—निरुक्त ।२।२ इन्द्रिय मात्र का ग्रहण दृष्टीन्द्रिय से होता है, क्योंकि वह सभी इन्द्रियों में प्रधानतम है; इसीलिए यहाँ 'पश्यक'-'कश्यप' से इन्द्रियग्रामका अर्थ निकलता है) भी अपना-अपना स्वस्थ कर्म तीनसौ वर्ष तक करता रहे।

जातकर्मसंस्कार—उत्तरविधि की चतुर्थ 'मंत्रोद्बोधन' क्रिया के बाद शिशु के कंधों पर से हाथ हटाकर उसे जन्मस्थान पर ले जाया जाता है और पाँचवीं 'जन्मभूमि स्तवन' क्रिया की जाती है। जन्मदात्री जननी के समान जन्मभूमि के प्रति भी श्रद्धा एवं पूज्यता की भावना उचित एवं आवश्यक है। हम सामाजिक रूप में पृथ्वी माता के ही पुत्र हैं (माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः—अथर्व० १२।१।१२) अतः वह हमारे लिए पूज्य है। अस्तु, एतदर्थ शिशु को जन्मस्थल पर ले जाकर एक मंत्र[3] का जप तदर्थभावना पूर्वक किया जाता है। अच्छी संतान के जन्म से, माता के हृदय में जो दिव्य आनन्द एवं आल्हाद उत्पन्न होता है (हृदय दिवि चन्द्रमसि श्रितम्' मानों हृदय आनन्दवश द्युलोक प्रकाशलोक में तथा आल्हादक

---

१. आयुर्वेद में शिशु के कान के पास पत्थर टकराकर ध्वनि उत्पन्न करने (अश्मघट्टन) का विधान है; तद्यथा—'अश्मनोः संघट्टनं कर्णयोर्मूले' (चरक) शारीर। ८।४२) 'अश्मनोर्वादनं चास्य कर्णमूले समाचरेत्। अ० हृ० उत्तर० १।२)। इस अश्मघट्टन का मुख्य प्रयोजन है यह परीक्षा कि शिशु सुन सकता है या नहीं; परन्तु पाषाणसदृश दृढ़ बनने की शिक्षा भी इसमें अभि-प्रेत है।

२. त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद् देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्।' यजु० ३।६२। पार० १।१६।७)।

३. 'ओम्। वेद ते भूमि हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्। वेदाहं तन्मां तद्विद्यात् पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शामदःशतम्।' (पारस्कर-गृह्यसूत्र १।१६।१७)।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चंद्रलोक में जा ठहरा हो), उसी की भावना जन्मभूमि माता के हृदय में शिशु-सत्पुत्र के कारण करके इस मंत्र द्वारा प्रार्थना की जा रही है कि शिशु का जीवन शतायु हो, नेत्र सौ वर्ष तक स्वस्थ रूप में देखते रहें, कान स्वस्थ रूप में सुनते रहें, आदि।

छठी क्रिया 'प्रसूता सान्त्वन' की है। इसके अन्तर्गत चार मंत्र[1] हैं जिनको पढ़कर सुगन्धित जल से प्रसूता के शरीर का परिषेक एवं मार्जन किया जाता है तथा इस प्रकार एक ओर तो प्रसव क्लेशिता प्रसूता के शरीर की सफाई होती है तथा दूसरी ओर उसे सान्त्वन प्राप्त होता है। सान्त्वन-आश्वासन पूर्वक यह शुभकामना भी इन मंत्रों में की गई है कि प्रजापति, इन्द्र, अग्नि—गुणमय परमपिता परमात्मा उसकी प्रजा को पाप-कष्ट-अकालमृत्यु आदि से बचाकर उसका कल्याण (शर्म) करें तथा उत्तम पौत्रादि भी प्रदान करें। प्रत्येक जननी सत्पुत्र के अतिरिक्त पौत्रादि की भी कामना करती है। उसी के लिए यह क्रिया है।

जातकर्मसंस्कार—उत्तरविधि की सातवीं क्रिया 'आशीर्वचनात्मक है इसमें दो मन्त्र हैं। प्रथम[2] मन्त्र में शिशु के प्रति 'तू कौन है, कतम है यह प्रश्न पूछते हुए आशीर्वादात्मक उद्बोधन दिया गया है, तू तो अमृतरूप हैं और आज-दिन सौर जगत् में पृथ्वीपर अवतीर्ण हुआ है।' द्वितीय[3] मंत्र द्वारा आशीर्वादात्मक प्रार्थना की गई है कि शिशु स्वस्थतापूर्वक क्रमश: बढ़ता हुआ दिन-रात अहोरात्र अर्धमास, मास, ऋतु संवत्सर का होते-होते वृद्धावस्था तक स्वास्थ्यसमृद्धिमय पूर्णायु प्राप्त करे। ये सब क्रियाएँ प्रारम्भ से ही शिशु का पिता ही सम्पन्न कर रहा है।

आशीर्वचनात्मक—क्रिया के द्वितीय खण्ड में चार मन्त्र आते हैं। इन्हें पढ़कर स्नेहपूर्वक शिशु का सिर सूँघा जाता है तथा उसे आशीर्वाद दिया जाता है। प्रथम[4] तथा द्वितीय[5] मन्त्रों में यह बताया गया है कि शिशु के नाक नक्श अंगोपांग

---

१. यत्ते सुसीमे हृदयं हितमन्त: प्रजापतौ। वेदाहं मन्ये तद्ब्रह्म माहं पौत्रमघं निगाम्। यत् पृथिव्याममृत दिवि चन्द्रमसि श्रितम। वेदामृतस्याहं नाम माहं पौत्रमघं रिषम्। इन्द्राग्नी शर्म यच्छतं प्रजायै मे प्रजापति:। यथाऽयं न प्रमीयते पुत्रो जनित्र्या अधि। यदहश्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयं श्रितम्। तदहं विद्वांस्तत्पश्यन् माहं पौत्रमघं रुदम्। (साममंत्र ब्रा० १।५।१०।१३। गोभिल गृ० सू० २।८।४-७)।

२. 'कोऽसि कतमोऽस्येषोऽस्यमृतोऽसि। आहस्पत्यं मासं प्रविशासौ। (साम मंत्र ब्रा० १।५।१४)

३. 'सत्वाऽन्हे परिददात्वहस्त्वा रात्र्यै परिददातु रात्रिस्त्वाऽहोरात्राभ्यां परिददात्वहोरात्रौ त्वाऽर्द्धमासेभ्य: परिदत्तामर्द्धमासास्त्वा मासेभ्य: परिददतु मासास्त्वर्तुभ्य: परिददत्वृतवस्त्वा संवत्सराय परिददतु संवत्सरस्त्वाऽऽयुषे जरायै परिददात्वसौ। (साममंत्र ब्रा० १।५।१५)

४. अंगादंगात्संस्रवसि हृदयादधिजायसे। प्राणं ते प्राणेन संदधामि जीव मे यावदायुषम्।' (साममन्त्रब्राह्मण १।५।१६)।

५ अंगादंगात्संभवसि हृदयादधिजायसे। वेदो वै पुत्रनामासि स जीव शरद: शतम्' (साममन्त्रब्राह्मण १।५।१)।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अवयव, हृदय, मन, आदि की घड़न माता-पिता के अंग अंग से[1] घटक तत्व लेकर तदनुरूप होती है।[2] साथ ही शिशु को 'वेद' नाम का स्मरण करा के जीवट युक्त शतायु होने का आशीर्वाद दिया गया है। इस आशीर्वाद में आत्मीयता निर्दिष्ट भी है, जिसके प्रतीक स्वरूप शिशु के सिर को स्नेह पूर्वक सूँघा जाता है। तृतीय[3] मंत्र में शिशु को पाषाण के अनुरूप दृढचरित्र, दृढ़व्रती, परशु के समान दुष्टता नाशक दुष्टदलन एवं ठोसकुन्दन के समान सद्‌गुणी सदाचारी बनने का उपदेश देकर शतायु होने का आशीर्वाद दिया गया है। यहां भी 'आत्माऽसि' के द्वारा घनिष्ठ आत्मीयता जतायी गई है, जिसका प्रतीक सिर सूँघना तथा आलिंगन है। चौथे[4] मन्त्र में सिर सूँघने की क्रिया के साथ अनिष्टनिवारण की भी बात कही गयी है। शिरोघ्राणन के साथ-साथ आलिंगन भी किया जाता है।

आशीर्वचनात्मक यह सातवीं क्रिया भी प्रसूति-कक्ष में ही सम्पन्न की जाती है।

जातकर्मसंस्कार—उत्तरविधिकी आठवीं क्रिया 'स्तन्यपायन' शिशु को माता के स्तनका दूध पिलाने की है। सामान्यत: तीन-चार दिन तक प्रसूता के स्तनों में दूध उतरता नहीं है, उसके बाद उतरता है।[5] जब भी उतरे, यह 'स्तन्यपायन' की क्रिया तभी की जाती है। हाँ रस्म के नाम पर पहले दिन भी की जा सकती है। प्रथम सप्ताह तक स्तन्य पीयूष या खीस (Colostrum) कहाता है और इसमें यह विशेषता होती है कि शिशु के गर्भकाल में जो मल महास्रोतस् में संचित पड़ा होता है उसे यह बाहर निकाल देता है; अत: इस पीयूष से शिशु को वंचित नहीं करना चाहिए। इस 'स्तन्य पायन' क्रिया में तीन मन्त्र हैं। प्रथम[6] मन्त्र द्वारा प्रसूता को यह कह कर आश्वस्त एवं प्रसन्न किया जाता है कि—वह पूजनीय है, वीरजननी है क्योंकि उसने ऐसा वीर सुपुत्र जनकर हमें वीरवान् बनाया है। इस मन्त्र से ईश्वर प्रार्थना करके एवं प्रसूता को प्रसन्न आश्वस्त करके किंचित् उष्ण सुगन्धित जलसे उसके दोनों

---

१. 'अथास्य दक्षिणे कर्णे मन्त्रमुच्चारयेदिमम्। अगादंगात्संभवसि हृदयादभिजायसे। आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदां शतम्। शतायुः शतवर्षोऽसि दीर्घमायुरवाप्नुहि। नक्षत्राणि दिशो रात्रिरहृश्च त्वाऽभिरक्षतु।
(अ० हृ०। उत्तर। १।२,४)

२. माता-पिता के डिम्बाणु शुक्राणु में विद्यमान क्रोमोजोम्स (Chromosomes) तथा पित्र्यघटों (Genes) के माध्यम से यह अनुवृत्ति होती है।

३. 'अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव। आत्मासि पुत्र मा मृथा: स जीव शरदां शतम्। (सा० मं० ब्रा० १।५।१८)।

४. 'पशूनां त्वा हिंकारेणाभि जिघ्राम्यसौ। (साममन्त्रब्राह्मण १।५।१६)।

५. 'प्रसूतित:। तृतीयेऽह्नि चतुर्थे वा स्त्रीणां स्तन्यम् प्रवर्तते।
(अष्टांगहृदय। उत्तर। १।११-१२)

६. 'ओम्। इडासि मैत्रावरुणी वीरे वीरमजीजनथा:। सा त्वं वीरवती भव याऽस्मान्वीरवतोऽकरत्।' (पार० १।१६।१६)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्तनों को धोया तथा शुभ्र स्वच्छ वस्त्र से पोंछा जाता है। फिर दूसरे[1] मन्त्र को पढ़ कर दायाँ स्तन शिशु के मुख में प्रविष्ट किया जाता है।[2] इस द्वितीय मन्त्र में स्तनपुष्टि की भावना करके प्रार्थना की गयी है कि मधुर, पौष्टिक दूध शिशु को प्राप्त हो। तीसरे[3] मन्त्र द्वारा वाम स्तन से शिशु को स्तन्य चुसवाया जाता है। इस तृतीय मन्त्र में मधुर पौष्टिक स्तन्य के साथ-साथ कल्याण सुख, रत्न, वसुविद्या[4], धन, ज्ञान आदि की कामना की गयी है। स्नेह आदि के साथ-साथ शुभकामनापूर्वक जो स्तन्य पायन कराया जाता है उससे भौतिक शरीरिक लाभ के साथ-साथ मानसिक एवम् भावनात्मक कल्याण भी प्राप्त होता है।

जातकर्म संस्कार, उत्तरविधि की नौवीं क्रिया 'रक्षा कर्म' नामक है। इसमें कीट, पतंग, मक्खी, मच्छर, दुष्टवायु आदि के नाशार्थ तथा निवारणार्थ क्रिया की जाती है। बालग्रह, स्कन्द, शकुनि, पूतना, रेवती आदि के विपरीत की जाने वाली रक्षा क्रिया तथा दैवव्यपाश्रयचिकित्सा वस्तुतः कीटादि परक तथा मनःप्रभावक ही होती है। अस्तु, इस 'रक्षाकर्म' के दो खंड हैं—प्रथम, उदकुम्भस्थापन, तथा द्वितीय होम। 'उदकुम्भस्थापन' का अर्थ है, स्वच्छ जल से पूर्ण कलश या घड़ा प्रसूता स्त्री के सिरहाने की ओर रखना। दस अहोरात्र तक यह कलश या घड़ा वहाँ रखने का प्रयोजन है शान्ति, वात, पित्त, प्रशम। एतदर्थ निर्धारित मन्त्र[5] में जल देवता से प्रार्थना की गई है कि जैसे वह दिव्य गुण वालों की सुरक्षार्थ सदा सन्नद्ध (जागृत) रहता है वैसे प्रसूता की भी सतर्कतापूर्वक रक्षा करे। 'होम' का अर्थ है प्रसूता-कक्ष में अग्नि में प्रातः सायम् दो बार दस दिन तक भात, सरसों, वचा, गुग्गुलु आदि की दो दो आहुतियां देना।[6] लोबान आदि भी मिला सकते हैं तथा सामान्य हवन-सामग्री भी। परन्तु बहुत धुआँ भी नहीं करना चाहिये। होम का प्रयोजन है—कीट, पतंग, मक्खी, मच्छर आदि यातुधानों (रक्षोगण) एवं दुष्टवायु का निराकरण। एतदर्थ

---

१. 'ओम्। इम स्तनमूर्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्ने सरिरस्य मध्ये। उत्सं जुषस्व मधुमन्तमर्वन्त्समुद्रियं सदनमाविशस्व ॥'
(यजु० १७। ८७।। पार० १। १६। २०)

२. 'स्तनमूर्ध्वमेतेनैव विधिना दक्षिणं पातुं पुरस्तात् प्रयच्छेत् ॥'
(चरक। शारीर। ८। ४६)

३. 'ओम्। यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि। या रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः ॥'
(ऋग्वेद। १।१६४। ४९॥ पार०। १। १६। २१)

४. न्यूनतम २५ वर्ष तक पूर्ण ब्रह्मचर्य पूर्वक प्राप्त की गई वेद-वेदांग विद्या को 'वसुविद्या' कहते हैं।

५. 'ओम्। आपो देवेषु जाग्रथ यथा देवेषु जाग्रथ। एवमस्यां सूतिकायां सपुत्रिकाया जाग्रथ ॥' (पारस्कर०। १। १६। २२)

६. 'तथा तण्डुलबलिहोमः सततमुभयकालं क्रियेत प्राङ्नामकर्मणः।'
(च०। शा०। २। ८। ४७)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

निर्धारित दो मन्त्रों[1] में इन सबके विनाशार्थ प्रार्थना की गई है।

यद्यपि 'स्तन्यपायन' की क्रिया का समुचित काल तीसरे चौथे दिन का होता है तथा 'रक्षाकर्म' की अवधि दस अहोरात्र तक की होती है, तथापि ये दोनों, आठवीं नौवीं क्रियाएँ 'जातकर्म संस्कार' की अंगभूत ही हैं। पाँचवीं (जन्मभूमि स्तवन) से लेकर नौवीं (रक्षाकर्म) तक ये पाँचों क्रियाएँ प्रसूता-कक्ष में ही की जाती हैं। इनके बाद शिशु एवं पिता तो अगली क्रिया के लिए भी प्रसूता-कक्ष में ही रहते है परन्तु क्रिया का सामाजिक स्थल संस्कार-स्थान हो जाता है।

जातकर्म संस्कार--उत्तरविधि की दसवीं क्रिया सामाजिक आशीर्वादात्मक है। संस्कार स्थान पर उपस्थित सज्जन तीन मन्त्रों[2] से शिशु को शुभाशीर्वाद देते हैं कि दिव्य गुणी तपस्वी मृत्युंजयी ऋषि-मुनि ही इस शिशु के रूप में जन्मे है वे इसे जीवन-युक्त दीर्घायु प्रदान करें, मृत्यु को परास्त करता हुआ यह सत्कर्म पूर्ण बहुकर्मी शतायु प्राप्त करे, यह अनेक पुत्र पौत्रादि से युक्त तथा धन धान्य, गौ, अश्व, हाथी आदि परोपकारी सम्पत्ति से पूर्ण दीर्घायु प्राप्त करे, और सतत सुदानी शक्ति-अभयदायी सूर्य से यह निर्भयतापूर्ण स्वास्थ्यमय उत्तम आयु प्राप्त करे।

उपसंहार

आज सारे विश्व में हाहाकार मचा हुआ है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने दूषित स्वार्थ एवं बुद्बुदवत् क्षणस्थायी दुःखपरिणामी सुख के लिए दूसरे के अहित सम्पादन में लगा हुआ है। अलीकसबल मिथ्याशक्तिमान् व्यक्ति निर्बल को चूस रहा है। धोखाधड़ी, लूटपाट, हिंसा, अत्याचार, दुराचार, भ्रष्टाचार का सर्वत्र बोल-बाला है। समाज की प्रत्येक इकाई विशृंखल एवं पथभ्रष्ट तथा स्वार्थी हो गई है।

---

१. (क) 'ओम्। शण्डामर्का उपवीरः शौण्डिकेय उलूखलः। मलिम्लुचो द्रोणासश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा॥ इदं शण्डामर्काभ्यामुपवीराय शौण्डिकेयायोलूखलाय मलिम्लुचाय द्रोणोभ्यश्च्यवनाय इदन्न मम॥'

(ख) 'ओम्। आलिखन्ननिमिषः किंवदन्त उपश्रुतिः हर्यक्षः कुम्भीशत्रुः पात्रपाणिः नृमणिर्हन्त्रीमुखः सर्षपारुणश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा॥ इदमालिखतेऽनिमिषाय किंवदद्भ्य उपश्रुतये हर्यक्षाय कुम्भीशत्रवे पात्रपाणये नृमणये हन्त्रीमुखाय सर्षपारुणायच्यवनाय इदन्न मम॥'

(पारस्कर। कां० १। १६। २३)

२. (क) 'ओम्। मा नो हासिषुर्ऋषयो दैव्या ये तनूपा ये नस्तन्वस्तनूजाः। अमर्त्या मर्त्यां अभि नः सचध्वमायुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः॥

(अथर्ववेद। ६। ४१। ३)

(ख) 'ओम्। इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम्। शतं जीवन्तः शरदः पुरूचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन॥'

(अथर्ववेद। १२। २। २३)

(ग) ओम्। विवस्वान्नो अभयं कृणोतु यः सुत्रामा जीरदानुः सुदानुः। इहेमे वीरा बहवो भवन्तु गोमदश्ववन्मय्यस्तु पुष्टम्॥'

(अथर्ववेद। १८। ३। ६१)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऐसे अंधकारपूर्ण अ ९ मेंयुग में निस्तार का एकमात्र उपाय यही है कि असत् से सत् की ओर तथा अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने के लिए जीवन के सही मूल्यों तथा शुभ आदर्शों को पुनः जागृत किया जाय, और उसकी विधि यह है कि समाज की इकाई को जन्म से ही सुधारा जाय, 'Catch him young' इसलिए 'जातकर्म संस्कार' की प्रथा को सही तथा पूरे रूप में पुनः प्रचलित करने के प्रयोजन से यह लेख लिखा गया है। आवागमन के चक्र में जीव पूर्णता की प्राप्ति का प्रयास करता रहता है और 'जातकर्म संस्कार' की प्रक्रिया उसे आदर्श जीवन बनाने के लिए उद्‌बोधन प्रदान कर सकती है।

जैसा कि जातकर्म संस्कार की प्रत्येक क्रिया का स्वरूप तथा प्रयोजन ऊपर बताया गया है, तदनुसार करने से तथा उन आदर्शों पर जीवन को ढालने से व्यष्टि का जीवन तो सुख स्वास्थ्य से पूर्ण होगा ही तथा साथ ही समष्टि एवं विश्व का रूप भी आदर्श एवं सुखमय बनेगा। परमपिता परमात्मा एतदर्थ कृपा करें, यही प्रार्थना है। ★

ट्रैक्ट : १००) हजार

१. आर्यसमाज क्या मानता है ? श्री मदनमोहन विद्यासागर
२. महर्षि दयानन्द की विशेषताएं : महात्मा नारायण स्वामी
३. आर्यसमाज की मान्यताएं : पं० रामचन्द्र देहलवी
४. विश्व को वेद का सन्देश—पं० भारतेन्द्रनाथ
५. आर्यसमाज के दस नियम [व्याख्या सहित]
६. निमन्त्रण आर्यसमाज का : स्व० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय
७. आर्यसमाज के १०० वर्ष : पं० भारतेन्द्र नाथ
८. सुख का मार्ग : पं० भारतेन्द्रनाथ
९. आर्य कौन ? पं० हरिशरण सिद्धान्तालंकार
१०. स्वास्थ्य का महान शत्रु अण्डा : स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती
११. साम्यवाद—समाजवाद क्यों नहीं ? महात्मा नारायण स्वामी
१२. स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश : महर्षि दयानन्द
१३. मूर्ति पूजा से हानियाँ : महर्षि दयानन्द
१४. आर्योद्देश्य रत्नमाला : महर्षि दयानन्द
१५. वैदिक संध्या—अर्थ सहित
१६. वेद महिमा

ये सभी ट्रैक्ट १००) हजार। १५) सैकड़ा दिए जाएंगे। ट्रैक्ट ११००० से कम हजार के रेट में नहीं भेजेंगे।

भारी संख्या में मंगाकर प्रचार करें

दयानन्द-संस्थान, नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आगे बढ़ता देश हमारा

अधिकाधिक लोगों के लिये ज्यादा कपड़ा

धोतियों और साड़ियों का उत्पादन बढ़कर 16 करोड़ वर्ग मीटर हो गया है, एक वर्ष पहले इनका उत्पादन केवल 10 करोड़ वर्ग मीटर था।

कंट्रोल का 90% कपड़ा सहकारी क्षेत्र की 28,000 फुटकर दुकानों से बेचा जाता है; इनमें से अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में हैं।

दृढ़ संकल्प और कड़ी मेहनत से हम और बढ़ेंगे

'सौ नई सफलताएं' पुस्तिका मुफ्त पाने के लिए कृपया इस पते पर लिखें :—

वितरण प्रबंधक,
डी.ए.वी.पी. 'वी' ब्लाक,
कस्तूरबा गांधी मार्ग,
नई दिल्ली-110001

davp 75/454

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्यसमाज शताब्दी के उपलक्ष्य में

सत्यार्थ-प्रकाश

[लागत से अत्यन्त कम मूल्य पर मंगाएं]

१. प्रचार संस्करण	२३×३६=१६ साइज़	३००) सैंकड़ा
२. राज संस्करण	बढ़िया साइज सजिल्द	३५०) सैंकड़ा
३. उपहार संस्करण	सर्वश्रेष्ठ कागज पर बढ़िया कपड़े की जिल्द	४५०) सैंकड़ा
४. शताब्दी संस्करण	१०×१५ इन्च साइज बढ़िया कपड़े की जिल्द	३१)
५. शताब्दी उपहार अनुपम संस्कणर	सबसे बढ़िया आर्ट पेपर पर १०० वर्ष में प्रथम बार छपा	६१)

इन रेटों पर कोई संस्था यह ग्रंथ नहीं दे सकती

नई......नई......बिल्कुल नयी

सशक्त भाव भरी श्रद्धापूर्ण भाषायुक्त

महर्षि दयानन्द की जीवनी

१६ चित्र : पृष्ठ २१२

तिरंगा बढ़िया कवर : मूल्य २) : १००)सैंकड़ा।

शीघ्रता कीजिए

भारी संख्या में मंगाकर बांटें

दयानन्द संस्थान नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महत्त्वपूर्ण नए प्रकाशन

१-ऋषि दयानन्द ने कहा था……

पृष्ठ ११२, तिरंगा बढ़िया आवरण
बढ़िया कागज : मूल्य १)४०,

२-महर्षि के प्रति श्रद्धांजलियाँ

तिरंगे आवरण में संसार के महान् पुरुषों की भाव भीनी
श्रद्धांजलियाँ— मूल्य १)४०,

३-वेद ज्योति

चारों वेदों के १००-१०० चुने हुए शतकों का आकर्षक संग्रह
मूल्य ४) : सजिल्द ६)

४-दयानन्द चित्र कथा

प्रचार संस्करण—एक रंगा : ३०) सैकड़ा
राज संस्करण—चार रंगों में छपा : ४५) सैकड़ा

५-सत्यार्थ प्रकाश-वेद के साइज में

आकर्षक आर्ट पेपर पर— मूल्य १०१)
(आज तक इस कागज पर छपने वाला पहला)
सफेद कागज पर— मूल्य ५१)

६-यज्ञ-प्रसाद—महात्मा आनन्द स्वामी जी

का प्रेरक उपदेश: यज्ञ के पश्चात् बाँटने के लिए— मूल्य ६० पैसे।

शीघ्र मंगाएं : स्टाक थोड़ा है

जन-ज्ञान (साप्ताहिक) व मासिक का नमूना मंगाएं

सपादक— जन-ज्ञान नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भक्त फूलसिंह

और

उनका आश्रम

—कपिलदेव शास्त्री, रोहतक

वर्षा ऋतु की संध्या। आकाश में काले बादल छाए थे। जैसे कि अब बरसे अब बरसे ! खेतों में थी हरियाली ईख, धान, ज्वार, बाजरे के पौधे लहलहा रहे थे। जंगल से पशु लौट रहे थे। दूर से वेदमंत्रों की ध्वनि कानों में पड़ रही थी। आश्रम की बालाएं संध्या-वन्दन में निमग्न थीं। ऐसे ही समय भक्त फूलसिंह के सुरम्य आश्रम खानपुर के कन्या गुरुकुल में मैंने प्रवेश किया।

यह आश्रम सोनीपत जिले की गोहाना तहसील के मुख्यालय से पांच मील दूर उत्तर-पूर्व कोण में खानपुर नाम के प्रसिद्ध गांव में स्थित है। इस समय इस आश्रम में २५०० (अढ़ाई हजार) कन्याएं दूर दराज के क्षेत्रों-प्रदेशों से आकर शिक्षा ग्रहण कर रही हैं। आश्रम के कुलपति आचार्य विष्णुमित्र जी ने घुमाकर सारा आश्रम दिखाया।

सन् १९३६ में महात्मा भक्त फूलसिंह ने तीन कन्याओं के साथ इस आश्रम की स्थापना की थी। उस समय हरियाणा में स्त्री शिक्षा नाममात्र की थी। शहरों में ही कहीं-कहीं लड़कियां पढ़ती थीं। ऐसे समय तपस्वी भक्त जी ने दूर दृष्टि से भविष्य को भांपकर कन्याओं की शिक्षा के लिए निपट देहात में यह शुभारम्भ किया। उस समय यहां दूर-दूर तक जंगल ही जंगल था। गाँव वालों ने भक्त जी को ८-९ बीघे धरती दी थी। ४० वर्ष पूर्व भक्त जी महाराज ने यहीं आकर डेरे डाले। उस समय यहां एक साधु की छोटा सी कुटिया थी। भक्त जी ने गांव वालों से मिलकर कुछ कच्ची दीवारों पर छप्पर डलवाकर कार्य आरम्भ किया।

'आज आश्रम के पास ५०० बीघा भूमि खानपुर गांव के भाइयों द्वारा दान में दी हुई है, अपना ट्रैक्टर है, जीप है, गोशाला है, डाकखाना है, बैंक है, टेलीफोन

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हैं, बिजली है, पक्की सड़क से गोहाना से मिला है। हरियाणा रोड़वेज की बस प्रातः से सायं तक बीसियों चक्कर लगाती है।

आज कन्या गुरुकुल खानपुर के पास एक करोड़ रुपये के लगभग की चल-अचल सम्पत्ति है। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से स्वीकृत, डिग्री कालेज है, अलग ट्रेनिंग कालेज है, जिसमें बी० एड०, आर्ट एण्ड क्राफ्ट (कला एवं उद्योग); पी० टी० आई०, ओ० टी०, जे० बी० टी० आदि अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था है। प्रौढ़ शिक्षण केन्द्र है जिसमें दीन हीना, गरीब, विधवा, परित्यक्ता बालिकाएं-युवतियां रहती हैं—जिनके भरण-पोषण की सम्पूर्ण व्यवस्था आश्रम करता है। सम्पूर्ण भारत खण्ड में केवलमात्र बालिकाओं के लिए 'महिला आयुर्वेदिक कालेज है, जिसमें पांच साल का पाठ्यक्रम है।' अपना सुव्यवस्थित हस्पताल है, प्राथमिक पाठशाला है, माध्यमिक व उच्च माध्यमिक विद्यालय हैं।

वर्तमान समय में संस्था का वार्षिक वजट २० लाख रुपये के लगभग है तथा प्रबन्धकर्तृ सभा विख्यात शिक्षा शास्त्री चौ० माड़ूसिंह (वर्तमान शिक्षा मंत्री हरियाणा राज्य, सरकार) की देखरेख में सुन्दर व सुचारू रूप से कार्य कर रही है।

महात्मा भक्त फूलसिंह का जन्म २४ फरवरी सन् १८८५ को सोनीपत के निकट माहरा गांव में एक सामान्य स्थिति के किसान श्री बाबर और माता तारा के यहां हुआ। उनका बचपन गरीबी में बीता। माता धार्मिक वृत्ति की थी। अतः कठिनाइयों में भी बालक फूलसिंह साहसी और निडर था। पास के गांव जूंआ से प्राईमरी कक्षा पास कर घर से ५० मील दूर महरौली के मिडिल स्कूल में पढ़ने गया। वहां के दुश्चरित्र मुख्याध्यापक को लाठियों से पीटकर सच्चरित्रता का पाठ पढ़ा, पंचायत में माफी मंगवा, तत्कालीन रोहतक जिले के खरखोदा कस्बे के मिडिल स्कूल में दाखिल हुआ। अपने साहस से मुख्याध्यापक को प्रसन्न कर, कुएं के अन्दर घुसा सांप मार, साथियों का सरताज बन गया और आठवीं कक्षा पास की। घरेलू परिस्थितिवश पानीपत में दो साल पटवारी की ट्रेनिंग ले पटवारी बन गये।

सन् १९०४ में आप महकमा माल में पटवारी बनकर सींक पाथरी गांव में आये। वहां चौ० केहरसिंह आपके सम्पर्क में आये। उन्होंने और उनके कुल ने आगे चलकर सामाजिक क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। श्री केहर सिंह ने पाथरी गांव की दुर्गा माता के मेले पर कटने वाले मुर्गे, मेंढे, सुअर, बकरे, बकरियों की निर्मम हत्या बंद करवाई। वहां से १९०७ में आपकी बदली राजपूत मुसलमानों के गांव उरलाणा में हो गई।

१९०७ में देश में आजादी की लहर का जबर्दस्त ज्वार उठा। लाला लाजपतराय को देश निकाला हो चुका था। यह लहर बड़े-बड़े शहरों से गांवों तक पहुंची। पंजाब में इस क्रांति का वाहक आर्यसमाज था। भक्त जी को उनके एक साथी (इसराना निवासी पटवारी प्रीतसिंह) आर्यसमाज पानीपत के उत्सव पर ले गये। वहां श्री स्वामी ब्रह्मानन्द से यज्ञोपवीत ले समाज सेवा का व्रत लिया तथा अंतिम सांस तक उसे निभाया।

सन् १९०९ में भारत में प्लेग की महामारी फैली। सारा देश बीमारी की दारुण ज्वाला में जलने लगा। लोग अपने सगे-संबंधियों को छोड़कर भागने लगे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बड़े-बड़े सरकारी अधिकारी छुट्टी लेकर घरों को भाग रहे थे। ऐसे विकट समय में विरले शूरवीर का ही काम था जो रोगियों की सेवा कर सके। ऐसे ही जवाँ मर्द थे भक्त जी। शरीर की चिन्ता किए विना किसी के खाने का प्रबन्ध करते, किसी की दवाई का, किसी के पानी का, किसी के दाह-कर्म का; गर्ज यह कि माता-पिता, पुत्र आदि के सभी कर्तव्य तत्परता से निबाह रहे थे। उनके पास एक उच्च अधिकारी का पत्र आया 'प्राणों को संकट में मत डालो, गाँव छोड़कर चले जाओ।' कर्मवीर भक्त फूलसिंह ने उत्तर दिया—'मौत एक दिन सबको आनी है, फिर मैं रोगियों की सेवा करता-करता परमेश्वर को प्यारा होता हूँ तो इससे बढ़कर मौत मुझे भला कहाँ मिल सकती है! मैं इस संकटकाल में पीड़ितों का नहीं छोड़ सकता।' ये शब्द हैं आज से ६० साल पहले के एक आर्यसमाजी पटवारी के जो अपने हल्के के मुसलमान रांघड़ों की सेवा में तत्पर था।

सन् १९११ में आप डरलाना से बदल कर करनाल के प्रसिद्ध पंचायती गाँव लाखू बुवाना में आ गये। सन् १९१४ की घटना है—एक बनिये ने अपनी स्त्री को मार डाला। पटवारी फूलसिंह ने ६०० रुपये रिश्वत के लेने तय करके महाजन की सहायता की। बनिया मुकदमा जीत गया और ६०० रुपये पटवारी जी को दे दिये। पटवारी फूलसिंह ने अपने हिस्से के तीन सौ रुपये रखकर शेष आवे गाँव के नम्बरदारों को दे दिये। नम्बरदार ख्याली राम ने अपने हिस्से के रिश्वत के रुपये यह कहते हुए लेने से इन्कार कर दिया कि मैं इस पाप की कमाई को घर में नहीं घुसने दूँगा। भक्त जी ने नम्बरदार से कहा कि यदि यह बुरा काम है तो मुझे रिश्वत लेने से क्यों नहीं रोकते।' नम्बरदार ने उत्तर दिया—पटवारी जी, जब आपकी आत्मा जागेगी तब स्वयं इस बुरे कार्य को छोड़ दोगे।'

नम्बरदार की इस बात से भक्त जी की सोई हुई आत्मा जाग उठी और उन्होंने उसी दिन से रिश्वत लेना छोड़ दिया। यही नहीं, १९१७ में पटवारी से त्यागपत्र देने के बाद आत्म शुद्धि के लिए ली हुई रिश्वत लौटाने के लिए अपना पैतृक घर पचास बीघा जमीन बेचकर पाँच हजार रुपया लोगों को वापिस किया। संसार के ज्ञात इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता कि किसी व्यक्ति ने यों ली हुई रिश्वत लौटाई हो। भक्त जी के जीवन का यह पहलू इतना ऊँचा है कि संसार में अपना सानी नहीं रखता। पर इस महत्वपूर्ण त्याग की तरफ कितने लोगों का ध्यान गया है।

सन् १९१६ में एक रात्रि को चौ॰ टोडरमल ने आपको पुकारा कि भक्त जी (इसी दिन से आप भक्त जी कहलाने लगे) हमारे गांव सभालका में पंजाब सरकार गायों के कत्ल के लिए बूचड़खाना (हत्या) खोलना चाहती है; आपके सिवाय हमारा कोई सहायक नहीं है। रात को ही भक्त जी ने लाखू बुवाना के चौधरियों को एकत्र कर सारी बात कह सुनाई। बस फिर क्या था। निश्चित दिन २० हजार आदमियों को ले आप संभालका जा पहुँचे। पुलिस कप्तान और जिलाधीश करनाल [दोनों अंग्रेज थे] ने आपको बूचड़खाना न खुलवाने का आश्वासन दे विदा किया। परन्तु राजद्रोह के रूप में आप पर मुकदमा चला दिया। अंग्रेजी सरकार के भय से उनका कोई वकील न बना। चौ॰ छोटूराम उन्हीं दिनों आगरा से वकालत पास करके आये थे। उन्होंने भक्त जी की डटकर केवल पैरवी ही नहीं की बल्कि मुकदमा भी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जीता। इससे उनकी धाक जम गई। इन दोनों महापुरुषों की मित्रता यावज्जीवन बनी रही। अनेक अवसर मतभेद के आये, पर समाज सुधार के कार्य मिलकर वह करते रहे।

भक्त जी महाराज की भक्ति पराकाष्ठा को जा पहुँची जिला जीन्द के ललितखेड़ा गाँव में। वहाँ गौओं की दुर्गति देखकर गोचर भूमि छुड़वाने के लिए व्रत लिया। यह व्रत १९ दिन बाद तभी खुला जब गौओं के लिए गाँव वालों ने पाँच सौ बीघा भूमि का गोरा छोड़ दिया।

१९१७ में भक्तजी महाराज ने पटवारी पदसे त्यागपत्र देकर सार्वजनिक जीवन में पदार्पण किया। पंचायत प्रणाली से गाँवों के आपसी झगड़ों को निबटाना प्रारम्भ किया। हरियाणा प्रदेश के हजारों उजड़े घरों को बसाया। दीवानी फौजदारी के मुकदमों को भक्त जी महाराज सहज ही सुलझा देते थे। उनका मूल मंत्र था—'पंच जहाँ परमेश्वर'। कतल तक के मामले भक्त जी ने सुलझाए। व्यक्तिगत विरोध के मामलों का शमन भक्त जी जिस शान्त ढग से करवाते थे वैसा करने वाला पुरुष आज देश में दृष्टिगोचर नहीं होता। जब आपसी कलह पंचायत द्वारा न सुलझते थे तब वे अनशन का आश्रय लेते थे। एक ऐसे ही मामले में आहूलाणा गाँव म उन्होंने छः दिन का व्रत किया। सन् १९२५ में आपने हरियाणा प्रान्त के कई सौ गाँवों की विशाल पंचायत गान्धरा गाँव में बुलवाई जिसमें विवाह-शादी में बरती जाने वाली अनेक कुरीतियाँ छुड़वाने (यथा बाल विवाह, दहेज, सांग, शराब आदि के सम्बन्ध में) के अनेक निर्णय करवाये जो आज भी हरियाणा के देहात में प्रचलित हैं। इस प्रकार कार्य करते हुए भक्त जी ने भले पुरुषों को एक संगठन में पिरो लिया। यही कारण है कि आज भी इस प्रदेश में पचायती प्रणाली का बड़ा महत्व है।

१९१८ में अपनी धर्मपत्नी घूपादेवी की सहमति से ३२ वर्ष की भरी जवानी की आयु में गृहस्थाश्रम छोड़ स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती से वानप्रस्थाश्रम की दीक्षा ली तथा सामाजिक सुधार के लिए विद्यालय की स्थापना के स्वप्न देखने लगे। उन्हीं दिनों आप अपने कुछ साथियों के साथ गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव पर गये। वहाँ गंगा के सुरम्य तट पर हिमालय की उपत्यका में स्वनामधन्य स्वामी श्रद्धानन्द की कुसुमित—सुरभित वाटिका को देखकर आप आनन्द विभोर हो उठे। एक दिन बाह्य वला में आपने हरियाणा की वीर भूमि में ऐसी ही सुन्दर संस्था स्थापित करने का शुभ संकल्प किया। गुरुकुल के मूल सिद्धान्त इतने आकर्षक थे कि वे दूसरों को अज्ञात रूप में आकर्षित करते थे। छात्रों का आश्रम में गुरु की देख-रेख में निवास गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का पहला और आवश्यक अंग था। छात्रों का वेश सीधा सादा था। संस्कृत वाङ्मय और प्राचीन आर्य संस्कृति की शिक्षा के साथ-साथ अर्वाचीन ज्ञान का राष्ट्र भाषा हिन्दी के माध्यम से यथासंभव अधिकतम ज्ञान करा देना गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का द्वितीय प्रमुख उद्देश्य था। गुरुकुल का सर्वप्रमुख उद्देश्य था चरित्र निर्माण। गुरुकुल कांगड़ी से भक्त जी जो नया संदेश लाए उसे मूर्त रूप देने के लिए वे पूरे दो वर्ष सारे हरियाणा में घूमते रहे। अन्त में भैंसवाल के चौधरियों ने उन्हें १५० डेढ़ सौ बीघा भूमि दान में दी। २३ मार्च १९२० को स्वामी श्रद्धानन्द के कर कमलों द्वारा गुरुकुल की नींव रखवाई। अपील पर २२ हजार रुपये नकद आये। उन दिनों चाँदी के रुपए हुआ करते

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

थे। एक बड़ा टोकड़ा चांदी के रुपयों से भर गया था। ३२ ब्रह्मचारी प्रविष्ट हुए। पवित्र वेद मंत्रों की ध्वनि से भैंसवाल का जंगल प्रतिध्वनित हो उठा।

१९२४ में भक्त जी ने गुरुकुल भैंसवाल के लिए एक लाख रुपये एकत्रित करने का व्रत लिया। इस समय भी आपने असाधारण तपस्या की। प्रातः से सायं तक खड़े रहते। २४ घन्टे में पाव भर जो के आटे की रोटी खाते। जब तक यह व्रत पूरा न हुआ गुरुकुल में न पधारे। आपका यह व्रत ४ वर्ष में पूरा हुआ। लगातार चार वर्ष तक प्रातः से सायं तक खड़े रहना सामान्य जनके वश का काम नहीं। फिर दिन रात अनेक धन्धों के लिए भागते रहना। मनस्वी कार्यार्थी के बगैर ऐसा कठोर नियम निभ नहीं सकता। सन् १९२८ में आपका व्रत पूरा हुआ। आपने जो तपस्या की वह फल रही है, गुरुकुल भैंसवाल हरियाणा राज्य की अपने ढंग की सबसे बड़ी राष्ट्रीय संस्था है। जहां छः सौ छात्र आश्रम व्यवस्था में रहकर बिना किसी भेद भाव के उच्चतम शिक्षा प्राप्त करते हैं। इस समय इस राष्ट्रीय संस्था में उड़ीसा, आंध्र, बिहार, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा और दिल्ली अर्थात् दस राज्यों के छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। गुरुकुल भैंसवाल के पास अपनी चार सौ बीघा जमीन है, हरियाणा नसल वाली गायों की गौशाला है, औषधालय है, डाकखाना है, बिजली है, ट्यूबवैल हैं, विशाल पुस्तकालय है, यज्ञ मंदिर है, विद्यालय—यहां विद्यालय के भवन हैं। गर्ज यह कि सर्वसाधन सम्पन्न संस्था है।

सन् १९२८ में गुड़गांव जिले के होडल कस्बे के चारों ओर के गांवों के मूले जाट और राजपूत हिन्दू होना चाहते थे। पड़ोसी गांव का जैलदार इस मामले में रुकावट बन गया। आपने पंचायत करके लोगों को समझाया पर जैलदार अपने दुराग्रह पर अटल रहा। इस पर आपने अनशन व्रत रखा। यह व्रत १८ दिन तक चला। श्री स्वामी श्रद्धानन्द और स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज ने बीच में पड़ कर शुद्धि का आश्वासन दे, यह व्रत खुलवाया।

सन् १९२९ के जून मास में रामपुर गांव का केहरसिंह नामक युवक शुद्ध होकर आर्य समाजी बन गया। भटिण्डू गांव के प्रसिद्ध आर्य समाजी चौ० हरिद्वारीलाल दहिय्या ने अपनी पुत्री का रिश्ता उससे कर दिया। मुसलमान मामा ने अपने भांजे का भात मामा की ओर से भांजे को दिये जाने वाले रुपये पैसे व कपड़ों की सहायता करने से इन्कार कर दिया। उस समय आपने जाटों की सबसे बड़ी खाद (कबीला) के दादा घासीराम को भात भरने के लिए तैयार किया और निश्चित समय दादा घासीराम अपने ३६० गांवों के चौधरियों को साथ ले हाथी पर सवार हो मामा का कार्य निभाने भटिण्डू जा पहुंचे। यह भगत जी महाराज का ही पुण्य प्रताप था कि उन हरियाणा के जाटों के दो सबसे बड़े समुदायों गठवला और रहिप्पा को एकत्रित कर दिया।

सन् १९३२ में रोहतक जिले की गोहाना तहसील की रमड़ा गांव की राजो नामक हिन्दू विधवा (जिसके पास दो सौ बीघा जमीन थी) नजदीक के मुसलमानों के गांव पुट्ठी में जाने लगी। साथ में अपनी युवती पुत्री को भी ले जाती। आपने पंचायत करके उसे रोका। कुछ दिन तो मां बेटी रुकी रहीं- पर कुछ दिन बाद फिर जाने लगीं। इस बात को विधवा का भतीजा न सह सका और उसने मां बेटी को खेतों में कत्ल कर डाला। नाबालिग होने से उसे उमर कैद का हुकम हुआ। भक्तजी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ने उसकी सहायता की और साल भर में ही युवक दासराय घर वापस आ गया। आततायियों का जितना डट कर मुकाबला भक्त जी ने किया हरियाणा में शायद ही दूसरे व्यक्ति ने किया होगा।

सन् १६३३ में दिल्ली के उपनगर नरेला के पास जमना खादर के गांव सेरसा जांटी की एक अविवाहिता नवयुवती कपड़े धोने यमुना किनारे गई। उसके पिता नेकीराम के गांव के कुछ शत्रुओं ने युवती को बलात् उठाकर मुसलमानों को सौंप दिया। कन्या के माता पिता तथा भाई ख्यालीराम गुरुकुल भैंसवाल में भक्त जी के पास आये तथा अपहरण की कहानी सुनाई। भक्त जी ने मां बेटे को वापिस घर भेज दिया तथा पिता गुरुकुल ठहरे। खोज करके भक्त जी इस निश्चय पर पहुंचे कि अपहृत कन्या मुसलमान रांघड़ों के गांव गूगाहेडी पहुंचाई जा चुकी है। निदान आप पड़ौस के गांव निदाणा की पंचायत से गूगाहेडी गये। दो बार पंचायत निष्फल लौटी। मुसलमान राजपूतों की धूर्तता को देख निदाना जाटों ने कहा—'रांघड़ो सुनो! यदि यह लडकी रखनी है तो निदाना की समझकर रखना गूगाहेड़ी, वैंशी की मुसलमान कन्याएँ कल ही जाटों के घर होंगी। मुसलमान इस ललकार को सह न सके—अगले ही दिन भक्त जी की सेवा में उस कन्या को छोड़ गये। इस तरह भक्त जी ने हिन्दुओं में क्षात्रतेज की भावना भर दी। स्त्री-जाति के उद्धार के लिए भक्त जी ने महान् कार्य किए हैं।

हैदराबाद राज्य में मुस्लिम साम्प्रदायिकता का दौर दौरा था। कांग्रेस का सत्याग्रह असफल हो चुका था। राज्य में मुल्ला मौलवियों का शासन था। पर्दे के पीछे इतिहाद् कुल मुसलमानों के नेता शासन कर रहे थे। ऐसे ही समय रियासत के आर्य समाजी कर्मक्षेत्र में उतरे। सन् १६३८ में शोलापुर में आर्यों का विशाल अधिवेशन हुआ। श्री महात्मा नारायण स्वामी व श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के नेतृत्व में सत्याग्रह का बिगुल बजा। जनवरी १६३६ में नारायण स्वामी गुरुकुल कांगड़ी के ग्यारह ब्रह्मचारियों को साथ ले गिरफ्तार हो गये। शोलापुर से लौट भक्त जी ने भी रोहतक के आर्यों को एकत्रित किया और हैदराबाद सत्याग्रह के लिए जत्थे भेजने प्रारम्भ किए। प्रथम जत्था अपने प्रमुख शिष्य आचार्य हरिश्चन्द्र के नेतृत्व में भेजा। जिसमें अन्य सत्याग्रहियों के अतिरिक्त गुरुकुल भैंसवाल के बलदेव, धर्ममित्र आदि थे। जाने से पहले अपने प्रेमियों से विदा ले रहे थे तो धर्मान्ध मुसलमानों ने उन पर आक्रमण कर दिया। गुरुकुल भैंसवाल के खजांची चौ० स्वरूपलाल और ब्रह्मचारी बड़ी संख्या में घायल हुए। सारी आपदाओं को भूलते हुए अपने मोर्चों में कहीं भी कमी न आने दी। आर्य शक्ति के सामने नवाब को झुकना पड़ा। हिन्दू मात्र की आकांक्षाएं पूरी हुई। सत्याग्रही जेलों से छूटे और विजय का डंका बजाते हुए लौटे। हैदराबाद सत्याग्रह में जो योग आपने दिया वैसा भारत में ढूंढे भी मिलना कठिन है।

पूज्य महात्मा भक्त फूलसिंह जी ने सारी आयु हरिजनों के उद्धार के लिए कुछ उठा न रक्खा। उनके आश्रम में उनको भोजन कराने वाला एक हरिजन छात्र ही था। हरिजन-उद्धार विषयक उनकी इच्छा पराकाष्ठा पर पहुंची-भारत प्रसिद्ध मोठकूप कांड में।

हिसार जिले की हांसी तहसील में मोठ (लुहारा) नामक मुसलमान राजपूतों का गांव था (जिसमें सन् ४७ के बाद पंजाब से आये हुए भाई आबाद हो गये हैं)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गाँव की कुल २७ हजार बीघा जमीन थी। जिसमें २३ हजार बीघा सेठ छाजूराम अलखापुर वालों की थी व चार हजार बीघा मुसलमान रांघड़ो और जाटों की थी। आबादी में ज्यादा घर मुसलमान राजपूतों के थे। चौधर भी उन्हीं की चलती थी। वहाँ के हरिजन पानी के बगैर बड़े तंग थे ? उन्होंने सेठ छाजूराम जी के कार मुख्त्यार से कुएँ की जगह ले ली।

कुआँ खोदा गया, नामचक डाला गया। ईंट आ गई पर गाँव के रांघड़ों व कुछ जाटों (जाटों में दो पार्टियाँ थीं, एक कुएँ के हक में थी, दूसरी खिलाफ थी। ने कुआँ न बनने दिया। नामचक बाहर निकाल कर फेंक दिया। चमारों ने राज्य सरकार के आगे दुहाई दी, पर सब व्यर्थ रहा। वे सेठ जुगल किशोर बिड़ला के पास गये। उन्होंने आपका नाम सुझाया। फिर क्या था चमार भागे हुए कन्या गुरुकुल खानपुर आये। आपने समय निकाल कर मोठ पहुँचने का वायदा किया।

एक सितम्बर १९४० को भक्त जी रिवाड़ी निवासी चौ० सोहबतसिंह व ईकस निवासी चौ० राजमल को साथ लेकर मोठ पहुँचे। मोठ के मुसलमान राजपूत काफी जाबर थे ? उन्होंने मौजा माँढ़ा के साँड को कुछ दिन पहले ही कत्ल किया था। सेठ छाजूराम के घर के निकट वे रोज गौओं को कत्ल करते थे। आस पास के गाँव उनसे तंग थे। मुसलमान रांघड़ किसी से घबराते न थे। भक्त जी ने गाँव वालों को इकट्ठा करना चाहा। पर वे इकठ्ठे न हुए। भक्त जी अलग-अलग प्रत्येक रांघड़ के घर जा-जाकर मुसलमानों को समझाने लगे पर कोई असर न हुआ। चौ० सोहबतसिंह व चौ० राजमलसिंह लौट गए और जीन्द कौंसल के सदस्य बहाबलपुर निवासी चौ० मनसीराम उनके पास आ गए। पांच सितम्बर को राघंड़ गांव की चौपाल में इकट्ठे हुए। भक्त जी ने मार्मिक अपील की। उन्होंने कहा कि हरिजन भी उस खुदा की औलाद हैं जिसकी हम। जिस प्रकार हवा पर हम सब का हक है। इन गरीबों का कुआं बनने दो।

मुसलमान राजपूतों और जाटों पर इस अपील का कोई असर न हुआ। भक्त जी महाराज के अनशन का समाचार पत्रों में पढ़ कर दिल्ली, पंजाब, हरियाणा के लोग बड़ी भारी संख्या में नारनौंद पहुँचने शुरू हो गए। मोटर कार, ताँगा, साईकल, लारी आदि सवारियों का ताँता लग गया। दिल्ली से सेठ जुगल किशोर बिड़ला पधारे। महात्मा गांधी के भेजे हरिजन सेवक संघ के अध्यक्ष। वियोगी हरि आये। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज आकर आखिर समय तक नारनौंद में ही बिराजे रहे। पंजाब राज्य के चौ० टीकाराम तथा चौ० सूरजमल भी पधारे। सेठ छाजूराम कलकत्ता व चौ० छोटूराम माल-मंत्री पंजाब सरकार के तार आए। पर धर्मप्राण भक्त जी महाराज ने अपनी टेक न छोड़ी। भक्त जी उस समय जिस ऊँचे धरातल पर व्रत कर रहे थे उसका आभास उनके द्वारा लिखे गए अनेक पत्रों से मिलता है। आपने मुसलमान राजपूतों को बताया कि मैं पांच तारीख से भूखा हूँ तथा उस समय तक भोजन नहीं करूंगा जब तक आप चमार हरिजनों का कुआँ न बनने देंगे। मुसलमानों में से एक वृद्ध ने युवकों से कहा कि—इस चमार व (चमारों के) बाबा को पकड़ कर जंगल में छोड़ आओ और इनका कुआँ अच्छी तरह बनवाना, समझे ! कुछ उद्दण्ड युवक रात्रि को भक्त जी महाराज व मनसाराम को पकड़ कर ले चले। उस समय रात के ११ बजे थे। जंगल में जाकर उन्होंने भक्त जी महाराज की दाढ़ी खैंची, लात घूंसे मारे और

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कांटेदार झाड़ियों में पटक दिया। यही नहीं जंगल से सूखे झाड़-झंकार इकट्ठा करके उनमें भक्त जी महाराज को जलाने की तैयारी करने लगे। एक समझदार युवक ने कहा यह हमारी मार से ही मर जायेगा इसे फूंको मत। चौ० मनसाराम को जंगल के दूसरे कोने में जा छोड़ा। इस तरह अधमरा करके युवक तो गांव लौट आये। थोड़ी देर बाद मोठ के एक महाजन मुसलमान लुहार वहां आये। भक्त जी को पानी पिलाया जिससे उनकी चेतना लौट आई वे दोनों उन्हें ढाणी नामक गांव में छोड़ गये। वहां से भक्त जी महाराज निकट के माढ़ी नामक गांव में पहुंचे। चौ० सेवामानी ने उनकी सेवा की। आठ सितम्बर को वे सबसे प्रसिद्ध और बड़े गांव नारनौंद में पहुंचे।

आठ सितम्बर १९४० को भक्त जी महाराज ने नारनौंद गांव का बड़ा चौपाल पानामीलन वाला में गांव के लोगों को इकट्ठा किया और मौजामोठ के हरिजनों की कहानी सुनाई तथा ५ सितम्बर से जारी अपनी भूख हड़ताल की बात बताई २३ सितम्बर १९४० को ठीक १९ दिन बाद भक्त जी महाराज का अनशन व्रत उस समय पूरा हुआ, जब उनके भक्त चौ० नौनन्दसिंह जी उपदेशक (अब स्वामी नित्यानन्द और पिनाना माजरा निवासी चौ० रामनाथ जी ने आकर उन्हें समाचार दिया कि कुआं बनकर तैयार है, आप चल कर जल ग्रहण करें।

भक्त जी महाराज अपने गुरु ब्रह्मानन्द जी की देख रेख में डोला में बैठ कर मोठ चले। वह अद्भुत दृश्य था। भक्त जी महाराज की सवारी के साथ हजारों स्त्री, पुरुष, बच्चे चल रहे थे। भक्त जी महाराज की सवारी जब नारनौंद से चल कर मोठ पहुंची तो ऋषि दयानन्द और भक्त जी महाराज के जयघोष से आकाश गूंज उठा। ऐसे मोहक वातावरण में भक्त जी महाराज ने नए कुएँ से चमारों द्वारा निकाले गए पानी का आचमन किया और जिन रांघड़ युवकों ने उन्हें जान से मार डालने का निश्चय करके मृतक समझ जंगल में छोड़ दिया था उन्हीं के हाथों से संतरे का रसपान कर व्रत समाप्त किया।

उनके व्रत की समाप्ति का सफल समाचार श्री वियोगी हरि जी से सुनकर महात्मा गांधी ने २६ अक्तूबर १९४० को जो पत्र उन्हें लिखा था उसे अविकल रूप में यहां दिया जा रहा है।

हरिजन सेवक
२०-१०-१९४०

मुझे श्री वियोगी हरि जी के पत्रों से भक्त फूलसिंह जी के पवित्र अनशन व्रत का सब समाचार मिला। भक्त जी के हृदय में हरिजनों के प्रति किए गए अन्याय का गहरा दुःख था। उनकी दोनों पक्षों के प्रति शुभ कामना थी। हरिजनों को पीने के पानी का बड़ा कष्ट था। इसे दूर करने के लिए उन्हें अनशन व्रत करना पड़ा।

इनका अनशन व्रत मोठ के मुसलमान रांघड़ों तथा जाटों को अपने पवित्र प्रेम से उन्हें सच्चा रास्ता दिखाने का था। यह व्रत केवल धर्मबुद्धि से तथा सच्चे ईश्वर विश्वास पर किया गया था। व्रत काल में अनेकों बार असफलता के बादल मंडराए। परन्तु भक्त जी का धैर्य और ईश्वरविश्वास प्रबल था।

भगवान् की ज्योति में वे अपनी सफलता देखते थे। समय आया, वे अपने व्रत में सफल हुए। मेरे राजकोट के अनशन व्रत में विश्वास की कमी थी। प्रतिकूल

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

स्थिति ने मेरे मन को हिला दिया, जिससे मैं अपने व्रत में असफल रहा।

—मोहनदास कर्मचन्द गांधी

इस पावन अनशन की समाप्ति पर हरियाणा इलाके के सब हिन्दू-मुसलमान भाईयों से प्रार्थना करते हुए भक्त जीने कहा था कि अगर आप लोग भगवान् से घी, दूध वगैरा की बारिश अपने घरों में होता देखना चाहते हैं तो प्रभु के प्यारे पुत्रों को अपना सच्चा सेवक समझ कर अपने कुओं से मनचाहा पानी लेने की सहूलियत जल्दी से जल्दी देवें।

व्रत को समाप्ति पर रोहतक और दिल्ली में भक्त जी महाराज का भारी सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया।

दिल्ली में उनकी विश्व के महान् पुरुष महात्मा गांधी से भेंट हुई। दिल्ली से लौटकर आप कन्या गुरुकुल खानपुर में विश्राम के लिए चले गए।

कुछ दिन बाद आप फिर सामाजिक क्षेत्र में उतरे। उस समय महात्मा गांधी द्वारा चलाया हुआ व्यक्तिगत सत्याग्रह चल रहा था। आप की उसमें भाग लेने की इच्छा थी। आपने महात्मा गांधी को पत्र भी लिखा कि उन्हें सत्याग्रह करने की आज्ञा दी जावे। पर गांधी जी ने उन्हें हरिजन कल्याण में ही लगे रहने की सलाह दी।

भक्त जी महाराज अनशन व्रत के बाद स्वास्थ्य लाभ कर ही रहे थे कि उन्हीं दिनों आर्यसमाज लोहारू के उत्साही नवयुवक मंत्री ठाकुर भगवतसिंह जी आप के पास आए और लोहारू रियासत के हिन्दुओं के नवाब लोहारू द्वारा उत्पड़ीन की ब्यौरेवार कहानी सुनाई। लोहारू तत्कालीन पंजाब और राजस्थान के मध्य छोटी सी रियासत थी। जिसमें केवल मात्र ५२ गांव थे। वहां का धर्मान्ध नवाब निजाम हैदराबाद बनने के स्वप्न ले रहा था। चोहड़ नामक गांव में नवाब के अत्याचार पराकाष्ठा पर पहुंच चुके थे। वहां के जाट युवकों ने नवाब का मुकाबला किया। पांच युवक शहीद हुए। नवाब ने सारा गांव उजाड़ डाला। रियासत में धार्मिक प्रचार पर पावन्दी लगा दी गई। आप कन्या गुरुकुल खानपुर से ठाकुर भगवन्ता सिंह के साथ लोहारू पहुंचे और नवाब से मिले। नवाब को आपने समझाया। नवाब ने आर्यसमाज के जलसे को आज्ञा दी और कहा 'भक्त जी महाराज मैं स्वयं आर्यसमाज के जलसे में भाग लूंगा।'

२९ मार्च १९४१ का दिन आर्यसमाज लोहारु के उत्सव का निश्चित हुआ। सोत्साह जलसे की तैयारी होने लगी। हरियाणा वेद प्रचार मण्डल के अध्यक्ष पं० समरसिंह वेदालंकार दो दिन पहले ही अपनी भजन मण्डलियां लेकर लोहारु पहुंच चुके थे। निश्चित तारीख व निश्चित समय पर वीतराग सन्यासी स्वामी स्वतन्त्रानंद जी भक्त जी महाराज के साथ लोहारु स्टेशन पर पहुंचे। अत्याचार पीड़ित जनता नेताओं के आगमन पर अपने उत्साह पर संयम न रख सकी और उन्होंने जलूस निकालने का आग्रह किया। भक्त जी महाराज ने युवकों को समझाया कि "इस समय उत्सव कर लो, जलस अगले साल देख लेना जबकि हमारे पांव जम जावें।" पर उनकी बात पर किसी ने ध्यान न दिया। जलूस का रंग ढंग देखते ही बनता था। जब चल समारोह मण्डी पार कर आर्यसमाज मन्दिर की ओर मुड़कर नवाव के किले के नीचे पहुंचा तो नवाब की पुलिस और शहर के मुसलमानों ने भरपूर तैयारी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के साथ आक्रमण किया। असावधान आर्य किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। जलूस में भगदड़ पड़ गई। भक्त जी महाराज ओ३म् पताका लिए जलूस के आगे-आगे चल रहे थे। उनके दांये बांये चौ० नौनन्दसिंह और चौ० मोहड़सिंह थे। ठीक पीछे स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज थे। स्वामी जी अपने विशाल शरीर तथा हाथों पर लाठियों का प्रहार सहते स्टेशन पर जा पहुँचे, जो नवाब की हदबन्दी से बाहर था। भक्त जी आक्रमणकारी आततताइयों के शिकार बने। चौ० नौनन्दसिंह और चौ० मोहड़सिंह अपने बलिष्ट शरीरों पर उस आक्रमण की मार को न सहते तो आपका वहीं काम तमाम हो गया होता, तीनों बेहोश हो गये। नवाब की पुलिस तीनों को उठाकर किले में ले गई।

समाचार पत्रों द्वारा जब यह खबर बाहर पहुँची तो गठवाला पंचायत के नेता दादा घासीराम, गुरुकुल भैंसवाल के आचार्य हरिश्चन्द्र, वद्य योगेन्द्रपाल सिंह, चौ० स्वरूपलाल जिलाधीश हिसार का पत्र लेकर लोहारू गये। नवाब से मिले तथा भक्त जी व उनके दोनों साथियों चौ० नौनन्दसिंह व चौ० मोहड़सिंह को साथ लेकर दिल्ली के इर्विन अस्पताल पहुचे। उस समय तक भक्त जी महाराज बेहोश थे। आपका महीनों इलाज चला। ठीक होकर आप भैंसवाल आये। गुरुकुल भैंसवाल की सम्पूर्ण व्यवस्था वहाँ के स्नातकों के हाथ में सौंप उस तरफ से निश्चित हो गये। उनकी अन्तिम चिन्ता कन्या गुरुकुल खानपुर थी। उसके लिए भागदौड़ करके आप उसे स्थायी रूप देना चाहते थे।

भक्त जी महाराज का शरीर अनेक आघातों से जर्जरित हो चुका था आपने अन्याय के प्रतिरोध के लिए ३ दिन से २४ दिन तक चलने वाले चौदह अनशन व्रत किये थे। हैदराबाद सत्याग्रह के दौरान रोहतक में हुए आक्रमण और लोहारु के भयानक लाठी प्रहारों से आपकी काया छलनी हो चुकी थी। आयु भर आपने मुस्लिम साम्प्रदायिकता का मुकाबला किया। इस कारण से मुसलमान राजपूत आपके प्राणों के ग्राहक हो गये थे। आपको इस बात का ज्ञान था इसलिए आप अपने प्रेमियों से बार-बार कहा करते थे कि "भाइयो! अब पता नहीं इस शरीर को कितने दिन रहना है। मेरे भरोसे कोई काम न छोड़ो। पंचायती संगठन बनाकर सब मिल जुलकर काम करो। पता नहीं कहाँ, किस दिन, यह शरीर गोली का निशाना बना दिया जावे।"

आपके भक्तों ने आपकी स्वास्थ्य रक्षा रखनी चाही, पर भक्त जी महाराज ने उनको मना करते हुए कहा—"यह संसार प्रभु की इच्छा से चलता है। जब तक उसे इस शरीर से काम लेना है कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। आखिर सबको एक दिन जाना है, फिर शरीर की चिन्ता क्यों?

१४ अगस्त १९४२ अर्थात श्रावण सुदी द्वितीय संवत् १९९९ का दिन था। आकाश में काली घटा छाई हुई थी। रात के नौ बज चुके थे। भक्त जी महाराज अपने कुछ श्रद्धालु भक्तों से घिरे कन्या गुरुकुल खानपुर के तालाब के किनारे विशाल वट वृक्ष से कुछ हटकर ईश्वर भजन में मग्न थे और बार-बार भक्त कबीर के इस दोहे को दोहरा रहे थे कि—

मेरा मुझ में कुछ नहीं जो कुछ है तेरा।
तेरा तुझको सौंपते क्या लागे है मेरा॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उस समय कन्या गुरुकुल जंगल के मध्य स्थित था। चारों ओर मीलों बियाबान जंगल था। झाड़, झखाड़, जाल, कीकर, हींस आदि से वह वन व्याप्त था। जगल में से फौजी वेश में तीन व्यक्ति हाथों में बन्दूक लिए आये और उन्होंने ललकार कर कहा कि—'यहाँ फौजी भगोड़े रखते हो ?" यह कहकर उन्होंने बैटरी की लाइट वहाँ बैठे लोगों पर मारी। भक्त जी ने बैटरी की चौंध से आँखें बचाने के लिए हाथ आँखों पर रखकर कहा कि—"भाई यहाँ कोई फौजी भगोड़ा नहीं रहता, आप पूर्ण विश्वास करें।" यह कहते ही उन्होंने विशाल दाढ़ी वाले भक्त जी को पहचान कर उनकी छाती में तीन गोलियाँ मारी और जंगल में नौ दो ग्यारह हो गये।

भक्त जी महाराज के नृशंस वध की बात जंगल की आग की तरह रात में ही सारे इलाके में फैल गई। हजारों व्यक्ति कन्या गुरुकुल की ओर चल दिये। जिसने सुना वही खानपुर गाँव के कन्या गुरुकुल को जा रहा था। एक ही तमन्ना थी, चाह थी कि वह जल्दी से जल्दी खानपुर पहुँचे। रेल, सड़क, डाक-तार से शून्य, निपट देहात में जिसने भी कानोकान सुना कि खानपुर के जंगल में भक्त फूलसिंह आततायियों के हाथ धर्म की पवित्र बलि वेदी पर चढ़ा दिये गये वही उस समय उनके अंतिम दर्शन के लिए चल पड़ा। सारे इलाके में हरियाणे का प्रसिद्ध त्यौहार हरियाली तीज नहीं मनाया गया।

१६ अगस्त १९४२ को गुरुकुल भैंसवाल की पवित्र भूमि में आपका दाह-संस्कार किया गया। हजारों लोगों ने आपकी अर्थी को कन्धा दिया।

आपकी चिता में कई मन चंदन की लकड़ी, १२ मन घी तथा १० मन सामग्री डाली गई। इस प्रकार ५९ वर्ष की आयु में हमारे चरित्र नायक बलिदान धर्म की बलि हो गये। उनकी स्मृति में प्रतिवर्ष श्रावण सुदी तीज को उनके बलिदान स्थल पर मेला भरता है जिसमें राष्ट्र के गण्यमान्य व्यक्ति उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करने आते रहते हैं। पूज्य भक्त जी का जीवन पवित्रता और बलिदान का जीवन था। वे बड़े उदार नेता, साधु स्वभाव के महात्मा थे। उनका सारा समय गरीब जनता की सेवा में व्यतीत होता था। मुकदमेबाजी के वे सख्त खिलाफ थे और रिश्वतखोरी के परम दुश्मन थे। जुल्म के खिलाफ उनके दिल में विरोध का जबरदस्त तूफान उठ खड़ा होता था।

◆

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

संस्थान के नए प्रकाशन

१-आर्याभिविनय

काव्यमय व्याख्या सजिल्द २.५० अजिल्द १.५०

२-उपदेश मंजरी

महर्षि के पूना व्याख्यानों का संग्रह मूल्य १.५०

३-प्रभु के चरणों में

पं० हरिशरण सिद्धान्तालंकार मूल्य १.५०

४-आदर्श परिवार

पं०जुगल किशोर चतुर्वेदी
(विवाह पर बाँटने योग्य पुस्तक) मूल्य ६० पैसे

५-धर्म-सार

स्व० पं० गंगाप्रसाद जी की अनमोल रचना साधारण जनता में प्रचार के लिए मूल्य १ रु०

६-संस्कार विधि

राज संस्करण बड़ा साईज कपड़े की जिल्द मूल्य ६ रु०

७-धरती का स्वर्ग

पं० शिवकुमार जी शास्त्री (सदस्य लोक सभा) मूल्य १.५०

शीघ्र मंगाइए

दयानन्द संस्थान नई दिल्ली-११०००५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

क्या आप
अपने
परिवार
में
प्रभु की
अमर
वाणी
वेद
नहीं
लाएंगे
?

अधिक से अधिक सत्यार्थ-प्रकाश बाँटें

मूल्य : २००) सैंकड़ा । २५०) सैंकड़ा ।
३००) सैंकड़ा । ४५०) सैंकड़ा :

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सुन्दर फरनीचर का प्रगतिशील नाम

डिलाईट

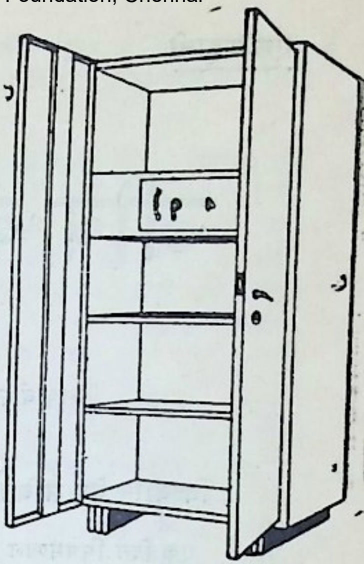

वर्षों [illegible] व और कार्यकुशलता के कारण आज डिलाईट की अलमारियां और फरनीचर सारे भारत में प्रसिद्ध हैं क्योंकि यह देखने में सुन्दर, मजबूत, टिकाऊ और पक्क [illegible] में उपलब्ध हैं। दुकान हो या घर, विवाह हो या कोई शुभ अवसर, यह सब का शोभा बढ़ाता है।

आप भी आज डिलाईट फरनीचर खरीद कर अपने घर, आफिस व दुकान की शोभा बढ़ावें और आनन्द पावें।

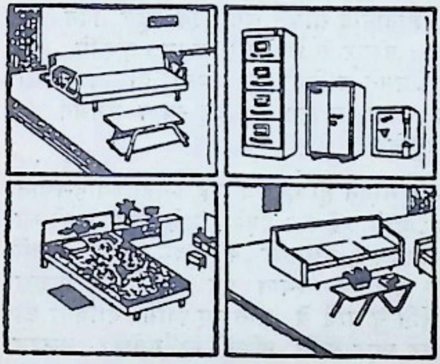

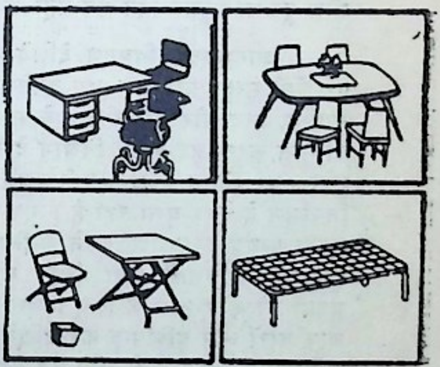

डिलाईट सेफ वर्क्स

कुतुब रोड, दिल्ली-६. फोन 511380

विक्रेता

१. काटेज स्टोर, २० विनय नगर मार्कीट, नई दिल्ली।
२. काश्मीर क्राकरी हाऊस, लक्कड़ बाजार, लुधियाना।
३. मित्तल ब्रादर्स, सिरकी बाजार, भटिण्डा। ४. निहालचन्द गोपालदास, अबोहर।
५. महेन्द्रा ब्रादर्स, कोर्ट रोड, मोगा।
६. जैम सेल्स कार्पोरेशन, सेक्टर ७-सी दु० नं० ३० मध्य मार्ग, चण्डीगढ़।
७. हरयाणा आयरन एण्ड स्टील इण्डस्ट्रीज, बाजार हिसारिया, सिरसा।
८. लीला इलैक्ट्रिक कं०, ७० कोतवाली रोड, श्री गंगानगर (राज०)।
९. राणा इण्डस्ट्रीज, लाडपुरा बाजार, कोटा (राज०)
१०. आदर्श इलैक्ट्रिक एण्ड जनरल सप्लायर्ज, नैकाओली, नीमच (म० प्र०)।
११. ओवरसीज ट्रेड एजेन्सीज, केसरगंज, अजमेर।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जीव का परिमाण

[आचार्य स्व० स्वामी आत्मानन्द जी महाराज]

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ।

एक दिन मित्रमण्डल में बैठे हुए ज्ञानानन्द सोचने लगा कि बहुत दिन हुए तत्वज्ञानी विद्वानों का उपदेश नहीं सुना। संसार के धन्धे तो समाप्त न होंगे, कुछ अपने उद्धार का भी यत्न करना चाहिए। उसने साथियों में अपना प्रस्ताव रक्खा और स्वीकृत हो गया। जहां ज्ञानानन्द जाना चाहता था वह स्थान लगभग ५० मील दूर था। दूसरे दिन सब वहां जा पहुंचे।

ज्ञानानन्द—मित्रगण, देखिये—यह सामने ही घना बन है। यहां स्थान-स्थान पर कैसी सुन्दर प्राकृतिक पुष्प वाटिकाएं लगी हुई हैं। इनमें खिले हुए फूलों की सुगन्धि, मन्द और शीतल वायु के साथ मिलकर, मस्तिष्क के सूक्ष्म नाड़ी तंतुओं को तृप्त करती हुई कैसा विश्राम दे रही है। स्थान-स्थान पर झरनों से गिरता हुआ मधुर शीतल जल, अपनी मधुर ध्वनि से मार्ग से जाते हुए प्यासे यात्रियों को निमन्त्रण दे देकर बुला रहा है। एक ओर मयूर आदि पक्षियों के मनोहर कलरव अपना माधर्य आस्वादित करने के लिए लालायित कर रहे हैं. और दूसरी ओर हाथियों की चिघाड़ें तथा सिंहों की गर्जनाएँ अपनी भयंकरता का अभिनय कर हृदयों को कांप उठने के लिए विवश कर रही हैं। इस वन का नाम नैमिष है। आप चारों ओर दृष्टिपात कर देखिये इसमें स्थान-स्थान पर तत्ववेत्ता महर्षियों की कुटियाएं हैं। ये सब ही लोग बड़े सदाचारी, तपस्वी, योगी और भिन्न-भिन्न विषयों के महाविद्वान् हैं।

इस वन में, वेद, वेदांग, धर्मशास्त्र राजनीति, आयुर्वेद आदि भिन्न-भिन्न विषयों के अनेक विद्यालय हैं। ये सब विद्यालय इन्हीं पूज्य महर्षियों की छत्रछाया में चल रहे हैं। इन लोगों को इन विद्यालयों को चलाने के लिए धन सम्बन्धी किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी पड़ती। राजा और धनिक लोग स्वयं ही इनके लिए इतना धन दे जाते हैं कि कई बार इन्हें अधिक हो जाने के कारण कितनी ही धन राशियें लोटानी पड़ती हैं। और फिर अनुचित कमाई का धन तो ये कभी ग्रहण करते ही नहीं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भारतवर्ष के लोग शिक्षा-दीक्षा के लिए अपनी संतान को ऐसे ही विरक्त महापुरुषों के पवित्र हाथों में सौंपते हैं और ऐसे ही विशुद्ध वायुमण्डल में उनके ब्रह्मचर्यकाल का निवास उचित समझते हैं।

यहां धनिक और निर्धन सबके लिये, भोजन आच्छादान, अध्ययन, रहन-सहन आदि का समान ही प्रबन्ध है। यहाँ के विद्यार्थियों को घूंटी में ही व्यवहार के रूप में साम्यवाद का मनोरंजक पाठ पढ़ाया जा रहा है। ये लोग शिक्षण-व्यवस्था के लिए अपने पास से व्यय नहीं कर सकते, ऐसी बात नहीं है। इनके पितृवर्ग इनके व्यय से भी कहीं अधिक धन स्वयं ही विद्यालयों के अर्पण कर जाते हैं। परन्तु इन्हें जाति के धन पर शिक्षित करने की भावना इसलिए दी जा रही है, कि ये साम्यवाद के रंग में रंगे जावें और अपने आपको जाति की विभूति समझें।

यह देखिए सामने एक विशाल सभाभूमि है। इसका यह कोमल हरा घास मखमल के भी दांत खट्टे कर रहा है। पूर्णिमा, अमावस, और अष्टमी को प्रति सप्ताह यहाँ इन लोगों की सभा लगती है। इसमें ऋषियों के प्रवचन तथा विभिन्न विषयों पर विचार होते हैं। इन सब ही विद्यालयों के अध्यापक तथा छात्र इस दिन यहाँ उपस्थित होते हैं। नगरों के भी बहुत से सज्जन इस दिन यहाँ इनके विचार सुनने के लिये आजाया करते हैं। आज सभा के अधिवेशन का दिन है। आइये, आज हम भी इस मनोहर दृश्य को देखें और महर्षियों के पवित्र विचारों से अपने आत्मा को तृप्त करें।

देखिये, यह सभामण्डप है। सभा के आह्वान के लिए घण्टी बज गई। कुटियाओं तथा विद्यालयों से निकल-निकल कर कुलवासी सभा में पधार रहे हैं। बस हम भी आज इस सारे ही कार्यक्रम को देखेंगे। देखिए नगरों के महानुभाव भी पहुँच गए। सब लोग बैठ रहे हैं। आइए हम भी बैठ जावें। सभा के प्रधान मन्त्री महात्मा आत्मबोध जी सभा की कार्यवाही को आरम्भ करने के लिए आरम्भिक भाषण करने लगे हैं।

आत्मबोध—मान्य महर्षिगण! विद्वन्मण्डल! ब्रह्मचारीगण! तथा आगन्तुक महोदयवर्ग! आप सबका प्रेमपूर्वक स्वागत करता हुआ मैं श्री प्रधान जी की आज्ञा से आज के कार्यक्रम को आरम्भ करता हूँ। तथा आप सबके परिचय के लिये निवेदन किये देता हूँ कि आजके विचार का विषय है—'जीवात्मा का परिमाण'।

यह मान लिया गया है कि, शरीर, इन्द्रिय, प्राण और अन्तःकरण इस सारे ही अध्यात्म जगत् से चैतन्य तत्त्व आत्मा भिन्न है। अब विचार यह प्रस्तुत है कि यह आत्मा, इस शरीर के किसी एक भाग में रहता है, इस सम्पूर्ण में ही फैला हुआ है, अथवा इसके अंदर व्यापक होता हुआ बाहर के आकाश में भी विस्तृत होकर व्यापक है।

आज हम सब लोग इस विचार में भाग ले रहे हैं। यह वाद-कथा है। इस कथा में विजय पराजय के विचार को दूर कर किसी पर किसी प्रकार का आक्षेप न करते हुए प्रेमपूर्वक अपने-अपने विषय को उपस्थित करना चाहिए। सबसे पहिले मैं श्री महात्मा विभुबोध जी से प्रेमपूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि वे इस विषय पर अपने विचार प्रकट करने की कृपा करें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वि० बो०—उपस्थित भद्र पुरुषो ! क्या आप जानते हैं कि आप कौन हैं ? मैं समझता हूं कि आप में से कुछ सज्जन यह जानते होंगे। परन्तु बहुत से महानुभाव तो छाती पर हाथ रखकर और अपना नाम लेकर यह कह उठेंगे कि अमुक हूं। आपको यह समझ रखना चाहिए कि आपने अपने शरीर को हाथ लगाया है और आप शरीर नहीं हैं। यदि आप शरीर होते तो यह कभी न कहा करते कि यह मेरा शरीर है। निश्चय ही आप वह शक्ति हैं कि जो शरीर को मेरा कहा करती हैं और इसी का नाम चैतन्य शक्ति, आत्मा अथवा जीव है।

आप हाथ उठाते हैं, पैर चलाते हैं पलक झपकते हैं और सिर हिलाते हैं। यदि आप इन सारे अंगों में व्यापक न होते तो क्या इनका संचालन कर सकते ? आपने बहुत सी घटनाएं ऐसी सुनी होंगी जो दूर देशों में घटी हैं। और उनके सम्बन्धियों को सैंकड़ों कोसों पर यहाँ ही बैठे हुए बिना बाहर के साधन के उनका अनुभव हो गया। मैं ऐसी बहुत सी घटनाओं को जानता हूं।

किसी का पिता विदेश में संकट में पड़ा है अथवा मृत्यु का ग्रास बन गया है। और पुत्र को यहाँ बैठे-बैठे ही उसके उस संकट अथवा मृत्यु की चिन्ता सताने लगी है। क्या आप यह मान सकते हैं कि पुत्र का आत्मा यदि इस शरीर तक ही सीमित होता, तो यहां बैठे-बैठे ही वह सैंकड़ों कोस दूर की इस घटना का अनुभव कर लेता ? मैं कहूंगा कि कदापि नहीं। क्योंकि पिता की वेदना की झलक पुत्र की आत्मा में पड़ने के लिए कोई वैज्ञानिक सम्बन्ध चाहिए। उन दोनों के आत्माओं का संसर्ग परस्पर होना चाहिए। और उन दोनों के सम्बन्ध का इसके अतिरिक्त और कोई साधन नहीं कि उन्हें शरीर के बाहर आकाश में भी व्यापक माना जावे।

मध्यमबोध—महात्मा जी! खाद्य नियंत्रण का समय है। इन छोटे-छोटे आत्माओं को खाने को मिलता नहीं; आपकी इन इतनी बड़ी आत्माओं को कहाँ से मिलेगा।

वि० बो०—मित्रवर ! खाने वाले तो शरीर हैं। और मैं इन्हें व्यापक बतला नहीं रहा। मैं तो उन आत्माओं को व्यापक कह रहा हूं जिनको खाने पीने की कोई आवश्यकता नहीं।

म० बो०—अच्छा सुनिये, आप प्रत्येक शरीर के आत्मा को व्यापक कह रहे हैं न ?

वि० बो—हां अवश्य।

म० बो०—तो कृपया यह बतलाने का कष्ट कीजिए कि यदि प्रत्येक आत्मा व्यापक है, तो जिस प्रकार पिता के आत्मा को पहुंचे आघात की वेदना पुत्र के आत्मा को सुन पड़ी, इस प्रकार व्यापक होने के कारण एक साथ मिले हुए, सब आत्माओं की वेदनाओं का अनुभव सब को क्यों नहीं होता ?

वि० बो०—जो जिसका निकट सम्बन्धी है अथवा जिसका जिसके साथ अधिक स्नेह है उसकी वेदना का अनुभव उसे होता है दूसरे की वेदना का दूसरे को नहीं।

म० बो०—क्यों ? इसके लिए कोई वैज्ञानिक कारण बतलाइए। संसर्ग तो सबका सब कामों में समान है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

और पुत्र आदि के आत्माओं को भी कभी, और किन्हीं ही घटनाओं का अनुभव होता है सदा सबका क्यों नहीं ?

और सुनिये, अपने-अपने शरीर में सीमित रहने की दशा में तो एक दूसरे की भावनाएँ एक दूसरे से छिपी रह सकती हैं, परन्तु व्यापक होने की अवस्था में एक दूसरे के भेद एक दूसरे पर क्यों नहीं खुल जाते, जबकि सारे ही आत्मा सूक्ष्म हैं, और व्यापक होने के कारण एक दूसरे में ओतप्रोत हैं ?

कृपया इस शंका का भी समाधान कीजिए कि व्यापक आत्मा का ज्ञान अल्प क्यों ? क्योंकि गुणी का गुण भी उसके सारे आधार में व्यापक होने के कारण व्यापक ही होना चाहिए। और यदि हाँ, तो कहिए परमात्मा और जीवात्मा में अब क्या भेद रहा ?

वि० बो०—महात्मन् ! संयोग सम्बन्ध की यह शक्ति नहीं कि एक दूसरे के गुणों को एक दूसरे में प्रविष्ट कर सके। देखिए आकाश, वायु, अग्नि आदि का परस्पर संयोग है, परन्तु उनमें से एक दूसरे के गुण किसी दूसरे में प्रविष्ट नहीं होते।

म० बो०—मान्यवर ! देखने में तो इसके विपरीत आता है, देखिये अग्नि की गर्मी से वायु गरम और जल की ठण्डक से ठण्डा हो जाता है।

वि० बो०—महात्मन् ! प्रत्यक्ष में ऐसा ही प्रतीत होता है। परंतु वस्तुत: अग्नि की गर्मी और जल की ठंडक वायु में नहीं गई। वायु में थोड़ी मात्रा में जल और अग्नि तत्त्व भी है। परन्तु यहाँ वायु तत्त्व की प्रधानता होने से इसके स्पर्श के प्रभाव में उन दोनों के स्पर्श दबे रहते हैं। वायु के साथ अग्नि और जल का संयोग हो जाने से उनके स्पर्श का उत्कृष्ट प्रभाव वायु के स्पर्श को निर्बल कर देता है और वायु के स्पर्श से दबे हुए उनके स्पर्श वायु में से ही प्रकट हो जाते हैं। अग्नि अथवा जल तत्त्व का संयोग हट जाने पर वे फिर उसी प्रकार वायु के स्पर्श से दबा दिये जाते हैं।

म० बो०—मान्यवर ! वायु के स्पर्श पर अग्नि और जल के स्पर्श का प्रभाव भी तो उन दोनों के अधिक निकट होने पर ही पड़ेगा। और इसे ही एक दूसरे के अंदर एक दूसरे के गुण का प्रवेश कहते हैं। यह दूसरी बात है कि वायु अग्नि आदि सावयव पदार्थों के अवयव एक दूसरे में प्रविष्ट होकर उनके गुणों को अपने गुणों से प्रभावित कर देते हैं और सूक्ष्म पदार्थों में अवयव न होने से उनका प्रवेश इस प्रकार का न होगा जैसा कि इनका। निरवयव पदार्थों के लिए तो हमें यही नियम मानना पड़ेगा कि सूक्ष्म वस्तुएँ भी एक दूसरे में इसलिए प्रविष्ट हो जाती हैं कि वे स्थान नहीं घेरतीं। अन्यथा सर्वसम्मत ईश्वर का जीव में प्रवेश असम्भव हो जायेगा।

वि० बो०—महात्मन्, ईश्वर जीव से भी सूक्ष्म है, और सूक्ष्म का प्रवेश स्थूल में हो जाया करता है, अत: ईश्वर का प्रवेश जीव में सम्भव है।

म० बो०—कैसे भगवन् ? कोई युक्ति बतलाइये। मैं फिर कहता हूँ कि इस व्यवस्था के लिये आपको यह मानना पड़ेगा कि सूक्ष्म वस्तुयें स्थान नहीं घेरतीं। और यह मान लेने पर अब ईश्वर का जीव में और प्रलय में जीव का ईश्वर में प्रवेश

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सम्भव हो सकेगा। और यदि बात ऐसी है तो सूक्ष्म होने और स्थान न घेरने के कारण व्यापक आत्मा भी एक दूसरे में प्रविष्ट हुए-हुए ही व्यापक कहे जा सकेंगे। और यदि यह ठीक है तो "सब आत्माओं पर सब आत्माओं के भेद प्रकट हो जाने चाहियें" यह हमारी शंका अब भी आपसे उत्तर माँगने के लिए खड़ी है।

वि० बो०—महात्मन् ! शरीर से बाहर आकाश मण्डल में फैले हुए आत्मा एक दूसरे के गुणों का अनुभव नहीं कर सकते, क्योंकि वहाँ साधन नहीं है। आत्मा के गुणों का अनुभव करने के लिए आत्मा के साधन अन्तःकरण का होना आवश्यक है, और वह शरीर से बाहर काम नहीं कर सकता, अतः बाहर के आकाश में फैले हुए भी आत्मा एक दूसरे का भेद नहीं जान सकते।

म० बो०—और पुत्र के आत्मा ने सैंकड़ों कोसों पर बैठे हुए पिता के संकट का अनुभव कैसे कर लिया ? वहाँ भी तो अनुभव करने वाला आत्मा और है और संकट में पड़ा हुआ आत्मा और।

वि० बो०—पुत्र को पिता के संकट का अनुभव बाहर के आकाश में नहीं हुआ। उसके अपने शरीर में भी तो पिता का आत्मा व्यापक होने से वर्तमान ही है और यहाँ अंतःकरण है ही, अतः अनुभव हो जाता है।

म० बो०—आपने ठीक कहा। बस, इसी प्रकार ही अन्य आत्माओं को अपने शरीर के अन्दर के आकाश में भी हो जाना चाहिए, क्योंकि वहाँ भी वे आत्मा व्यापक ही हैं, और अंतःकरण भी वहाँ है ही। और जब अनुभव की सब सामग्री विद्यमान हैं तो एक दूसरे के भेद एक दूसरे पर प्रकट हो जाने चाहियें।

आत्मबोध—महात्मन् ! प्रधान जी की घंटी बज गई। महात्मा विभुबोध जी के साथ वार्तालाप का समय समाप्त हो गया। अब महात्मा मध्यमबोध जी के साथ महात्मा अणुबोध जी का विचार विनिमय होगा। मैं महात्मा अणुबोध जी से प्रार्थना करता हूँ कि वे अपने विचार प्रस्तुत करें।

अणुबोध जी सब बातें सुनते हुए सोच रहे थे—(मन में) आश्चर्य की बात है कुछ समझ में नहीं आता, वेदों में कहीं भी जीव के विभुपरिमाण का नाम तक नहीं मिलता और इसके विपरीत इसके अणु परिमाण वर्णन करने वाले अनेक मन्त्र मिलते हैं। वेद ही भारतीय धर्मशास्त्र, ब्राह्मणों, उपनिषदों तथा दर्शनों के प्राण हैं। और सबके परतः प्रमाण होते हुए वेद ही स्वतःप्रमाण सब शास्त्रों में माने गये हैं, फिर भी न जाने जीव का विभुवाद किस समय किस प्रकार चल पड़ा। इसके सिवाय समझ में कुछ नहीं आता कि वेद भूल जाने का यह परिणाम हो। उपनिषदों में भी जीव के परिमाण को अनेकों स्थलों पर अणु ही कहा गया है। जो लोग उपनिषदों से विभुवाद को सिद्ध करते हैं, वे भी केवल प्रतीयमान अभेदवाद की झलक से ऐसा करने लगे प्रतीत होते हैं। अन्यथा जीव के साक्षात् विभु परिमाण को इस प्रकार प्रकट करने वाला उपनिषदों में भी कोई वाक्य नहीं, जिस प्रकार कि अणु परिमाण को प्रकट करने वाले अनेकों वाक्य हैं।

सूत्रकार ऋषियों के सूत्रों में भी जब उन्हें गम्भीर दृष्टि से विचारा जाता है तो जीव के विभु परिमाण की सिद्धि होती दिखाई नहीं देती। हाँ इसमें कोई संदेह नहीं कि भाष्यकारों ने बहुधा जीव के विभु परिमाण को ही प्रकट करने की चेष्टा की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है। ऐसा प्रतीत होता है कि बीच में ऐसा कोई युग आया होगा, जब कि भाष्यकारों ने किसी विशेष परिस्थिति के वश इस परिमाण का प्रदर्शन करना आरम्भ किया होगा। एक सांख्य दर्शन को ही जब देखता हूँ तो इसी में इस परिमाण के विषय में कालभेद से दो प्रकार की व्यवस्थाएँ पाता हूँ। महर्षि पञ्चशिखाचार्य्य के समय में सांख्यशास्त्र में जीव के अणु परिमाण का ही वर्णन मिलता है उनके लिखे हुए इक्कीस सूत्रों में से चौदहवाँ सूत्र "तमणुमात्रमात्मानमनुविद्याहमस्मीत्येवं तावत्सम्प्रजानीते" (उस अणु परिमाण वाले अपने आपको जानकर मैं हूँ ऐसा बोध करता है) जीव के अणु परिमाण का ही बोधक है। परन्तु वाचस्पति मिश्र तथा विज्ञानभिक्षु आदि टीकाकारों के समय में उसी सांख्यशास्त्र में जीव के विभु परिमाण का उल्लेख किया गया दृष्टिगोचर होता है, और पञ्चशिखाचार्य के इस सूत्र में आये हुए अणु शब्द को भी (जो कि मात्रा शब्द के सहयोग के कारण परिमाण के अतिरिक्त और किसी अर्थ का प्रतिपादक हो ही नहीं सकता) खींच तान कर, और मात्रा शब्द की महत्ता को सर्वथा भुलाकर, सूक्ष्म अर्थ में लेते हुए विभु परिमाण की ही पुष्टि का यत्न दृष्टिगोचर होता है।

भगवान् बुद्ध के काल में भी सांख्यशास्त्र में जीव का अणु परिमाण ही माना जाता रहा है ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि अश्वघोष ने अपने लिखे हुए बुद्ध चरित के बारहवें सर्ग में लिखा है कि अण्ड कलाम ने भगवान् बुद्ध को सांख्य मत का उपदेश देते हुए कहा—

क्षेत्रज्ञ इति चात्मानं कथयन्त्यात्मचिन्तकाः। १२।२०
ततो मुञ्जादिषीकेव शकुनिः पञ्जरादिव।
क्षेत्रज्ञो निःसृतो देहान्मुक्त इत्यभिधीयते। १२।६४

(आत्मचिंतक लोग आत्मा को क्षेत्रज्ञ कहते हैं। जिस प्रकार मुञ्ज से सींक और पिंजरे से पक्षी निकलने पर मुक्त कहलाता है, इसी प्रकार शरीर से निकला हुआ "क्षेत्रज्ञ" अर्थात् आत्मा मुक्त कहलाता है)।[1] इन श्लोकों के दृष्टान्तों के अनुसार जीव का देह से निकल अलग हो जाना, जीव के अणु परिमाण को स्पष्ट सिद्ध कर रहा है। इस प्रकार बुद्ध के समय में भी सांख्यमत में जीव के अणु परिमाण का ही उल्लेख पाते है।

इस प्रकार इस सारी ऐतिहासिक दृष्टि को भी हम अपने उस विचार को पुष्ट करने का साधन देख रहे है कि भाष्यकारों के काल में जीव के परिमाण को किसी कारण से विभु मानने की कुछ प्रथा सी चल गई होगी। जिससे कि उन्होंने सूत्रों के भावों को उसी ओर ले जाने की चेष्टा की होगी। इसमें कारण वेदों का अज्ञान और उपनिषदों का अन्यथाज्ञान हो या कोई और यह भगवान् जाने। अस्तु जो कुछ भी हो, आज के विचार विनिमय में हमारे लिए केवल अपने कथन को युक्तिवाद तक ही सीमित रखने का आदेश दिया गया है। अन्यथा परिमाणवाद का आश्रय ले हम इस विषय का भली भाँति स्पष्टीकरण कर सकते हैं।

---

१. अश्वघोष के इस वचन की सूचना 'विरजानन्द वैदिकसंस्थान' गाजियाबाद के विद्वान् पं० उदयवीर शास्त्री जी ने दी। तदर्थ उनका धन्यवाद।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अणु बोध—भगवन् ! मध्यम बोध महोदय ! मैं अपने किसी कथन से पहले आपके विचारों से भली-भाँति परिचित हो जाना चाहता हूँ। आप जीवात्मा का परिमाणु अणु अथवा विभु न मानकर मध्यम मानते हैं। क्या आप यह बतलाने की कृपा करेंगे कि आपके इस मध्यम शब्द का क्या तात्पर्य है ? क्योंकि अणु और विभु के बीच के सब परिमाणों को मध्यम कहते हैं। अतः मध्यम का अर्थ सहस्रों कोस लम्बा-चौड़ा भी किया जा सकता है और एक द्वयणुक जितना छोटा-सा भी।

म० बो०—शरीर जितना बड़ा।

अ० बो०—कौन से शरीर जितना ? मनुष्य के शरीर जितना ?

म० बो०—जी हाँ।

अ० बो०—ठीक है। परन्तु आप पुनर्जन्म के मानने वाले हैं। अतः कृपया यह भी बतलाइये कि जब यह चींटी के शरीर में जावेगा, तब इसका परिमाण कितना होगा ?

म० बो०—चींटी के शरीर जितना।

अ० बो०—और जब हाथी के शरीर में जावेगा तब ?

म० बो०—तब हाथी के शरीर जितना होगा।

अ० बो०—महात्मन् ! आपके इन उत्तरों से तो यह सिद्ध होता हैं कि आत्मा सिकुड़ने और फैलने वाला है।

म० बो०—जी हाँ, शरीर के प्रतिबन्ध के कारण ऐसा हुआ करता है। जैसे कि छोटी कोठड़ी के अन्दर जलते हुए दीपक का प्रकाश उस कोठड़ी तक ही सीमित होता है और बड़े कमरे में रख देने पर उसी दीपक का प्रकाश सारे कमरे में फैल जाता है।

अणु बो०—महात्मन ! मैंने आपका सिद्धान्त समझ लिया। अब मैं विनम्र निवेदन करता हूँ कि मैं आपके इस विचार से सहमत नहीं हो सका। क्योंकि जिस प्रकार दीपक के भौतिक प्रकाश को मकान की भौतिक दीवारें रोककर संकुचित कर देती हैं, उसी प्रकार शरीर रूपी मकान की दीवारें आत्मा के स्वरूप को रोककर संकुचित नहीं कर सकती। भेद यह ही है कि वहाँ दीपक का प्रकाश भी भौतिक था और दीवारें भी। भौतिक से भौतिक का प्रतिबन्ध सम्भव था। परन्तु यहाँ दार्ष्टान्त में तो शरीर भौतिक है और आत्मा अभौतिक। अतः अभौतिक सूक्ष्म आत्मा शरीर की दीवार को पार कर बाहर निकल जावेगा उससे रोका नहीं जा सकता। दृष्टान्त की दूसरी विषमता यह है कि यहाँ आप दीपक के प्रकाश का विस्तार मकान में मानते हैं, दीपक का नहीं और वहाँ आत्मा के प्रकाश को नहीं, आत्मा को ही शरीर में व्यापक मानते हैं। वहाँ प्रकाश के सिकुड़ने से प्रकाश सिकुड़ता है दीपक नहीं और यहाँ आत्मा के स्वयं ही शरीर में व्यापक होने से आत्मा को ही शरीर में फैलने और सिकुड़ने वाला मानना पड़ेगा।

अस्तु, अब हम आपके इस सिकुड़ने और फैलने को भी विस्तार से समझना चाहते हैं। सिकुड़ने तथा फैलने वाली रबड़ आदि वस्तुओं में ऐसा देखा गया है कि उनके अवयव सिकुड़ने के समय आपस में सट जाते हैं और फैलने के समय अपने बीच में कुछ अवकाश देकर खुल जाते हैं। जीव को भी यदि सावयव पदार्थ मान लें तो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उसमें भी इसी प्रकार सिकुड़ने और फैलने की व्यवस्था मानी जा सकती है। परन्तु आपत्ति यह होगी कि सावयव मानने पर उसे विनाशी मानना पड़ जावेगा। परन्तु मानते आप भी उसे नित्य ही हैं। अतः यह संगति यहां बैठती नहीं।

इसी सम्बन्ध में मैं आपसे यह भी जानना चाहता हूँ कि आपके मत में आत्मा का स्वाभाविक परिमाण क्या है? क्योंकि इन शरीरों में तो वह निमित्त से सिकुड़ता तथा फैलता रहता है, अतः ये सब परिमाण तो नैमित्तिक हैं, स्वाभाविक नहीं।

म० बो०—जो परिमाण इसका अन्तिम शरीर में मुक्ति के समय होगा वही इसका स्वाभाविक परिमाण है।

अ० बो०—वह परिमाण इसमें आज तक कभी रहा है या नहीं?

म० बो०—नहीं।

अ० बो०—महात्मन्! तब तो इसके उस अन्तिम परिमाण को स्वाभाविक नहीं माना जा सकता।

म० बो०—क्यों?

अ० बो०—इसलिए कि जिस वस्तु का जो स्वभाव होता है वह पहिले और पीछे सदा उसके साथ होता है। बीच में किसी निमित्त के आ जाने से वह छिप जाया करता है और उस निमित्त के हट जाने पर फिर उसी प्रकार प्रकाश में आ जाया करता है। जैसे कि जल का स्वभाव शीतल है। कभी उसके साथ अग्नि का संयोग हो जाने पर अग्नि की गर्मी से शीतलता छिप जाया करती है, परन्तु उसके दूर होते ही फिर जल अपने शीतल स्वभाव में ही आ जाया करता है। अतः किसी वस्तु के स्वभाव को उसके साथ निमित्त का सम्बन्ध होने से पहिले और पीछे उस वस्तु में होना चाहिए। परन्तु जीव में आप ऐसा मानते नहीं। अतः परिमाण की दृष्टि से उनका कोई भी स्वभाव निश्चित नहीं किया जा सकता।

म० बो०—अच्छा महात्मन्! थोड़ी देर के लिए इस विषय को यहां ही छोड़कर मैं आपसे पूछता हूँ कि आत्मा का परिमाण अणु मानते हुए आप मेरी इन शंकाओं का क्या समाधान करेंगे?

१—आत्मा अणु होने के कारण शरीर के किसी एक ही भाग में रह सकेगा, तब तो उसे उसी भाग की घटनाओं का अनुभव होना चाहिए। गंगा में गोता लगाने पर सारे शरीर में पहुँची हुई शीतलता का उसे एक साथ ही अनुभव कैसे हुआ?

२—योग समाधि से आत्मा का ज्ञान बढ़ जाता है और उस अवस्था में यह शरीर के सारे नाड़ी तन्तु जाल का हर समय प्रत्यक्ष करता है। एक भाग में होने से उसी भाग की नाड़ियों का प्रत्यक्ष होना चाहिए। सबका कैसे हुआ?

अ० बो०—भगवन्! आपके प्रश्नों का एक ही उत्तर है और वह यह कि आत्मा यद्यपि अणु है और शरीर के एक भाग हृदय में रहता है परन्तु उसका ज्ञान-रूपी प्रकाश दूर तक फैला रहता है और उस प्रकाश के ही द्वारा इसे वे प्रत्यक्ष हुआ करते हैं जिनके विषय में आपने शंकाएँ की हैं।

म० बो०—आप आत्मा का परिमाण अणु मानते हैं। और आत्मा तथा उसके परिमाण को भी नित्य मानते हैं। आत्मा का एक गुण आप ज्ञान भी मानते हैं, जब

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कि आत्मा नित्य है तो उसके परिमाण की तरह उसका यह गुण ज्ञान भी नित्य ही होना चाहिए। परन्तु इसके विपरीत योगसमाधि तथा ईश्वरप्रणिधान से उसके उस ज्ञान में आप वृद्धि भी मानते हैं। यदि आत्मा का गुण ज्ञान बढ़ता घटता है तो उसके गुणी आत्मा में भी परिवर्तन मानना आवश्यक हो जावेगा। क्योंकि उसका ज्ञान ही तो उसका स्वभाव है और स्वभाव में परिवर्तन आने से उस स्वभाव वाली वस्तु में परिवर्तन का आना आवश्यक ठहरा। और यदि ऐसा मानना पड़ गया तो आत्मा विकारवान् सिद्ध हो जावेगा नित्य नहीं। कहिये इसका क्या समाधान है ?

अ० बो०—आपकी इस शंका का समाधान भी हमारे पहिले उत्तर से ही हो गया। हम पहिले कह आये हैं कि आत्मा यद्यपि अणु है परन्तु उसके ज्ञान का प्रकाश दूर तक फैला हुआ है, आत्मा के ज्ञान में कमी ज्ञान में कई प्रकार के दोषों के आ जाने से होती है। और उन दोषों का दूर किया जाना ही ज्ञान की वृद्धि कहलाता है। परन्तु इन दोनों के आने और जाने का आत्मा पर कोई प्रभाव नहीं है। जैसे कि घरों में आते हुए सूर्य के प्रकाश में, रोशनदानों में लगे हुए भिन्न प्रकार के शीशों के सहयोग से, कहीं पीलापन और कहीं धुंधलापन कई प्रकार के दोष आ जाते हैं। और उन शीशों के हटा देने पर दोष दूर होते जाने पर वह प्रकाश फिर वैसा ही निर्मल चमकने लगता है। परन्तु प्रकाश में इन दोषों के आने और हट जाने का सूर्य के बिम्ब पर कोई प्रभाव नहीं। ठीक इसी प्रकार ज्ञान के परिवर्तनों का आत्मा पर कोई प्रभाव नहीं।

अ० बो०—माननीय महात्माओ! आपके विचार-विनिमय के लिए नियत किया हुआ समय समाप्त हो गया। आप तीनों महानुभावों ने अपने इस हेतुवाद को जिस उत्तमता और प्रेम के साथ निभाया है इसके लिए हम लोग कृतज्ञ हैं और आप सबका धन्यवाद करते हैं। अब वेदों के प्रकाण्ड पण्डित और उपनिषदों के तत्त्ववेत्ता पूज्यपाद महर्षि व्यासदेव जी का इसी विषय पर प्रवचन होगा। आप सब उनके गम्भीर भाषण को ध्यान से सुनियेगा। मैं पूज्यपाद महर्षि जी से प्रार्थना करता हूं कि वे अपने प्रवचन को आरम्भ कर हमें अनुगृहीत करें।

म० व्या०—सभ्य समुदाय! मन्त्री महोदय ने "जीवात्मा के परिमाण" विषय पर कुछ कहने की प्रेरणा की है। जीव के परिमाण का निर्धारण हमने वेदान्त सूत्रों में भली भांति कर दिया है। अतः इस सम्बन्ध में कोई नया भाषण देने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। परन्तु आप सब कुछ सुनना चाहते हैं, अतः हम वेदान्त का वह ही प्रसंग आपके परिचय के लिए आपके सामने उपस्थित किये देते हैं। इस प्रसंग में आपको जहां-जहां शंकाएँ हों, निःशंक पूछते चलें। बिना संकोच उत्तर दिया जावेगा। वेदान्त दर्शन में एक स्वतन्त्र अधिकरण ही हमने इस विषय के अर्पण किया है। उसी अधिकरण का व्याख्यान आज हम इस सभा में करेंगे। विषय गम्भीर है, अतः ध्यान से सुनियेगा।

संसार में तीन प्रकार के परिमाण ही व्यवहार में आते है अणु, मध्यम और विभु। इनमें से जीव का परिमाण यदि मध्यम माना जावे तो मध्यम परिमाण वाली कोई भी वस्तु नित्य नहीं होती, अतः जीवात्मा के भी उत्पत्ति और विनाश मानने पड़ जावेंगे। अब शेष रह जाते हैं अणु और विभु दो परिमाण। जीव के परिमाण के सम्बन्ध में विवेचन करने से पहिले उपनिषदों के वाक्यों में कहीं-कहीं विभु परिमाण

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
की भी झलक प्रतीत हुआ करती है। और अणु परिमाण का भी बहुत से स्थलों में स्पष्ट आभास मिलता है। अतः इन दोनों परिस्थितियों को देखकर यह संशय होने लगता है कि—

"जीवात्मा का परिमाण अणु है या विभु" इस संशय के प्रकाश में आने पर हम पूर्वपक्षी की ओर से यह कहना चाहते हैं कि आत्मा का परिमाण विभु है और इस पक्ष की पुष्टि में उपनिषद् के कुछ वचन उपस्थित करते हैं।

स वा एष महानज आत्मा योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु (बृ० ४-४-२२)

(जीवात्मा महान्—अर्थात् विभु और अजन्मा है। वह ही आत्मा जो कि प्राणों के बीच में विज्ञानमय है।)

इस वचन में स्पष्ट ही आत्मा को विज्ञानमय और महान् कहा गया है। विज्ञानमय ब्रह्म ही हो सकता है और कोई नहीं। और महान् शब्द भी व्यापक ब्रह्म के लिए ही आया है। प्राणों के मध्य में कहा जाने से यह जीव है। और जीव और ईश्वर का अभेद है अतः उसे विज्ञानमय शब्द से कहा गया है। और इसी हेतु से उस के परिमाण को भी विभु कहा गया है। इसी प्रकार—

आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः, सत्यं विज्ञानमनन्तं ब्रह्म

(तै० २—१—१)

(आत्मा आकाश की तरह सर्वव्यापक और नित्य है, वह सत्य स्वरूप, विज्ञान स्वरूप और अनन्त—अर्थात् व्यापक है।)

इन वाक्यों में तो स्पष्ट ही आत्मा को आकाश की तरह व्यापक और अनन्त अर्थात् अपार कहते हुए विभु माना गया है। तथा—

स चानन्त्याय कल्पते (श्वे० ५—९)

(वह आत्मा अनन्त-रूपता को प्राप्त है अर्थात् विभु।)

इस श्वेताश्वतर के वचन से भी आत्मा का परिमाण विभु सिद्ध होता है। इस प्रकार अनेक श्रुतियों से आत्मा का परिमाण विभु ही सिद्ध होता है। अतः आत्मा विभु है। इस पूर्व पक्ष के उत्तर अब सुनिये—

उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम् (ब्र० सू० २—३—१९)

जीव अणु है, क्योंकि उसकी उत्क्रान्ति (शरीर से बाहर निकलना) गति (अन्य योनियों के लिये जाना) और आगति (अन्य शरीर में प्रवेश होना) ये तीन क्रियाएं सुनी जाती हैं। जैसे कि—

तस्य हैतस्य हृदयस्याग्रं प्रद्योतते, तेन प्रद्योतेनैष आत्मा निष्क्रामति चक्षुषो वा, मूर्ध्नो वा, अन्येभ्यो वा शरीरदेशेभ्यः

(बृ० ४—४—२)

(उस आत्मा के हृदय का अग्र भाग उसके प्रकाश से चमकता है। उस प्रकाश के साथ ही यह आत्मा, आँखों से, मूर्द्धा से अथवा शरीर के किसी और भाग से निकल जाता है।)

इस प्रकार जीव के इस शरीर से निकल जाने का इस वाक्य में वर्णन है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शरीर से निकलना व्यापक आत्मा का हो नहीं सकता, अतः इस उत्क्रान्ति का श्रवण आत्मा के अणु परिमाण को सिद्ध कर रहा है।

तदेव सक्तः सह कर्मणैति लिंगं मनो यत्र निषिक्तमस्य

(बृ० ४—४—६)

(जिस फल में आसक्त होकर इस आत्मा ने कर्म किया है, और इसीलिये जहां जाने के लिए इसका साधनरूप उत्सुक है, अपने उस कर्म के साथ; व्यवस्थानुसार उसे भोगने के लिए, यथोचित भोग योनि में चला जाता है) इस वाक्य में आत्मा के कर्मभोग के लिए कहीं अन्यत्र चले जाने का वर्णन है। यह ही गति का श्रवण है। व्यापक आत्मा में गति हो नहीं सकती, अतः इस गति के श्रवण के अनुसार भी आत्मा का परिणाम अणु ही मानना पड़ेगा।

तस्माल्लोकात्पुनरैत्यस्मै लोकाय कर्मणे (बृ० ४—४—६)

उस भोगयोनि से अथवा उभययोनि से फिर इस उभययोनि (जहां कर्म और भोग दोनों कर सकता है) मनुष्ययोनि में कर्म करने के लिये आता है।

इन वाक्य में जीव के फिर मनुष्य योनि में आने का वर्णन किया गया है। यह आगति का श्रवण है। और आगति अर्थात् आगमन व्यापक का सम्भव नहीं अतः आगति के श्रवण से भी आत्मा का परिमाण अणु ही मानना पड़ेगा।

आत्मा में विभु परिमाण का प्रतिपादन करने वाले उपनिषदों के वचन दो प्रकार के हैं। उनमें से कुछ तो ऐसे हैं जो ईश्वर के प्रकरण में आये हैं। ईश्वर का व्याख्यान करने वाले वाक्य तो उसके परिमाण को विभु कहेंगे ही, इसमें कोई क्षति नहीं।

जैसे कि—**"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"** (ब्रह्म सत्य विज्ञान और अनन्त अर्थात् व्यापक है) **"आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः"** (वह आकाश की तरह सर्वव्यापक और नित्य है)।

ये दोनों वचन ब्रह्म-निरूपण के प्रकरण में आये हैं, और उसी के परिमाण को विभु कह रहे हैं, ब्रह्म विभु है ही अतः उसके परिमाण को विभु कहने में कोई आपत्ति नहीं।

इनके अतिरिक्त कुछ वचन ऐसे हैं जो आये तो जीव के ही प्रकरण में है परन्तु भली-भांति विचारे बिना और उनका भाव समझे बिना विभु प्रमाण के प्रतिपादक प्रतीत होते हैं।

स वा एष महान् आत्मा योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु।

(बृ० ४—४—२२

(यह आत्मा महत्त्व सम्पन्न, अजन्मा और विज्ञानमय है जोकि प्राणों के मध्य में रहता है) अजन्मा तो जीव और ईश्वर दोनों ही हैं, परन्तु महान् शब्द का अर्थ व्यापक अर्थ करलें तो क्योंकि यह प्रकरण जीव का है अतः जीव विभु सिद्ध हो जाता है। क्योंकि प्राणेषु अर्थात् प्राणों के बीच में रहने वाला जीव ही हो सकता है, परन्तु यहां विभु अर्थ किया नहीं जा सकता, यहां तो उसे अपने प्राण समाज इन्द्रियों तथा मुख्य प्राणों की अपेक्षा चेतन और शक्तिशाली होने के कारण महत्त्व देते हुए महान्

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कहा गया है। सांसारिक राजा को भी तो लोग ईश्वर कहते हा हैं। अतः इस मंत्र से आत्मा का परिमाण विभु सिद्ध नहीं होता।

वि० बो०—भगवन्! इस वचन में विज्ञानमय शब्द भी आया है और यह शब्द आनन्दमय शब्द के साथ ब्रह्म के अर्थों में आता है, अतः यह प्रकरण तो ब्रह्म का होना चाहिए, जीव का नहीं।

म० व्या०—इस प्रकरण में विज्ञानमय को प्राणों के मध्य में रहने वाला कहा गया है। और प्राणों के मध्य में कार्य करता है जीव, अतः यहां का विज्ञानमय शब्द जीव के लिए ही आया है। और क्योंकि विज्ञान अर्थात् चैतन्य गुण जीव का भी है अतः उसे भी विज्ञानमय कहा जा सकता है। जहाँ यह शब्द आनन्दमय साथ आया है। वह प्रकरण पंच कोशों का है और विज्ञानमय कोश ब्रह्म नहीं प्रत्युत बुद्धि है। कोशों में से आनन्दमय कोश की ब्रह्म के स्थानापन्न वर्णन किया गया है क्योंकि तैत्तिरीय उपनिषद् में भार्गवी वारुणी विद्या के प्रकरण में वरुण से ब्रह्मोपासना की इच्छा करने पर भृगु को उन्होंने क्रम से अन्नमय, प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय कोशों का, तप करते हुए बोध कर लेने के बाद भी उसे फिर तप तपने के लिए ही कहा, और फिर इस तप के बाद जब उसे आनन्दमय का ज्ञान हो गया तो इस विद्या को समाप्त कर दिया गया। ब्रह्मप्राप्ति की जिज्ञासा से आये हुए शिष्य को ब्रह्म का बोध कराये बिना विद्या को समाप्त नहीं किया जा सकता था, इससे सिद्ध है कि आनन्दमय का ज्ञान ब्रह्म का ज्ञान ही है। और फलतः आनन्दमय शब्द ब्रह्म के अर्थों में ही आया है, इससे पहिला विज्ञानमय शब्द भी यदि ब्रह्म का ही वाचक होता तो महर्षि इस विद्या को वहां ही समाप्त कर देते परन्तु उन्होंने ऐसा न कर तप करते हुए इससे आगे और कुछ जानने की प्रेरणा की। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि विज्ञानमय शब्द ब्रह्म का वाचक नहीं बुद्धि का वाचक है।

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च। जीवो भागः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्प्यते (श्वे० ५।९)

(बाल के अग्रभाग के सौ टुकड़े किये जावें और फिर प्रत्येक के भी सौ सौ भाग किये जाएँ तो इनका एक भाग अर्थात् बाल की नोक का दस सहस्रवां भाग जीव का परिमाण समझो और वह जीव अनन्त अर्थात् अविनाशी है। इस प्रकार श्वेताश्वतर के इस वाक्य से भी जीव का परिमाण अणु ही सिद्ध होता है)।

वि० बो०—भगवन्! आपने आनन्त्य शब्द का अर्थ अविनाशी किया है, इसका अर्थ तो अपार अर्थात् जिसका पार न पाया जा सके, किया जाता है।

म० व्या०—अपार अर्थ करने पर इसका अर्थ विभु होगा, और ऐसी दशा में बाल के हजारवें भाग के समान परिमाण के साथ इसका अन्वय बोध कैसे हो सकेगा?

वि० बो०—भगवन्! यहां पर विभु अर्थ होने पर भी संगति इस प्रकार लग जावेगी, जीव यद्यपि व्यापक ही है और उसका परिमाण विभु ही है, परन्तु बुद्धि उपाधि की महिमा से गौण रूप से उसे अणु कह दिया गया है क्योंकि बुद्धि का परिमाण अणु है। उपाधि के दूर कर देने पर जीव और ब्रह्म का अभेद हो जाने पर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जीव का वास्तविक परिमाण विभु ही होगा, और उसका अनन्त शब्द के साथ सुगमता से अभेद सम्बन्ध से अन्वय हो सकेगा।

म० व्या०—महात्मन्! किसी भी प्रकरण में किसी शब्द का गौण अर्थ तभी लिया जाता है जब कि मुख्य अर्थ लेने से उसकी संगति ठीक न बैठती हो। इस प्रकरण में आये हुए अनन्त शब्द की मुख्य अर्थ में ही अणु शब्द के साथ संगति ठीक लग जाती है। कारण है कि अन्त शब्द के मुख्य अर्थ दो हैं एक पार और दूसरा विनाश। इन दोनों ही अर्थों में इस शब्द का प्रयोग स्मृतियों में मिलता है जैसे कि—
'उभयोरपि दृष्टोऽन्तः' (गीता २।१६)

(दोनों ही का पार पाया गया है, यहां अन्त शब्द पार अर्थ में आया है) और **'अन्तवन्त इमे देहाः'** (गीता २।१८) 'ये शरीर नाश वाले हैं' यहां विनाश अर्थ में आया है) ये दोनों ही इस शब्द के मुख्य अर्थ हैं। यहाँ अन्त शब्द का गीता के श्लोक-पादों के अनुसार अपार अर्थ भी हो सकता है और अविनाशी भी। इन दोनों ही मुख्य अर्थों में से अपार अर्थ लेने पर जीव का परिमाण विभु मानना पड़ जाता है, और फिर इसी वाक्य में आए हुए अणु परिमाण के साथ उसका अन्वय ठीक न बैठने पर बुद्धि उपाधि की कल्पना कर गौण अर्थ की शरण लेनी पड़ती है। परन्तु दूसरे मुख्य अर्थ विनाश को स्वीकार कर लेने पर अन्त शब्द का अर्थ अविनाशी हो जाता है और अब अणु शब्द के साथ उसका कोई विरोध न होने के कारण अन्वय होकर वाक्यार्थ ठीक बैठ जाता है। क्योंकि जीवात्मा अणु भी है और अविनाशी भी, अतः यहाँ इस शब्द का अर्थ अपार नहीं किया जा सकता। **'स्वात्मना चोत्तरयोः'** (ब्र० सू० २।३।२०)

उत्क्रान्ति के लिए कदाचित् यह भी कहा जा सके कि, जैसे ग्राम का स्वामी अधिकार से च्युत होने पर ग्राम में रहता हुआ भी वहिष्कृत समझा जाता है, इसी प्रकार शरीर में रहता हुआ भी आत्मा शरीर से पृथक् कहा जा सकता है। परन्तु आगे आये हुए गमन और आगमन दोनों ही आत्मा के बाहर गए और आए बिना नहीं बन सकते, और गमन और आगमन के मान लेने पर उत्क्रान्ति शब्द का अर्थ विवश शरीर से निकलना ही किया जा सकेगा क्योंकि एक स्थान से निकले बिना जाना और आना असम्भव हो जावेंगे। निकलना, जाना और आना यह तीनों क्रियाएँ व्यापक की हो नहीं सकतीं, अतः आत्मा का परिमाण अणु है।

'नाऽणुरतच्छ्रुतेरिति चेन्नेतराधिकारात्। २१

आत्मा को अणु नहीं कह सकते क्योंकि इसके विपरीत इसका विभु परिमाण प्रतिपादन करने वाली श्रुतिएँ मिलती हैं जैसे कि—

"आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः" बृ० ४।४।१२

(वह आकाश की तरह व्यापक और नित्य हैं) तथा **"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म"** (वह ब्रह्म सत्य ज्ञान और अनन्तस्वरूप है) इस प्रश्न का उत्तर सूत्र के उत्तरार्ध में देते हैं कि श्रुतिएँ इतर अर्थात् दूसरे आत्मा ब्रह्म के अधिकार की हैं अतः इनसे ब्रह्म का ही परिमाण विभु सिद्ध होता है, जीव का नहीं।

"स्वशब्दोन्मानाभ्यां च"। २२

इसलिए भी आत्मा का परिमाण अणु है कि उसके इस परिमाण को उन्मान वाक्यों में तथा साक्षात् अणु शब्द से ही कहा है जैसे कि—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः, यस्मिन् प्राणः पंचधा संविवेश" मु० ३।१।९

(इस अणु आत्मा का ज्ञान चित्त से होता है जिसके संसर्ग में पांच प्राणों का सन्निवेश है)।

वि० बो—भगवन् ! इस श्रुति में जो ज्ञातव्य आत्मा है वह ब्रह्म प्रतीत होता है जीव नहीं क्योंकि इसी प्रकरण में आगे चल कर इसे इन्द्रियों से गृहीत न होने वाला और ज्ञान के निर्मल हो जाने पर प्राप्त होने वाला तथा चित्त से जानने योग्य कहा है, और ऐसा आत्मा ब्रह्म ही हो सकता है, इसलिए यहाँ अणु शब्द का अर्थ अणु परिमाण न करते हुए सूक्ष्म अर्थ करना ठीक प्रतीत होता है, क्योंकि ब्रह्म अणु नहीं सूक्ष्म है।

म० व्या०—महात्मन् ! ऐसी बात नहीं, यदि यह प्रकरण ब्रह्म के प्रत्यक्ष का निषेध करने के लिए लिखा गया होता तो उसे चित्त से जानने योग्य न कहा जाता, क्योंकि ब्रह्म का प्रत्यक्ष तो चित्त के व्यापार के भी शान्त हो जाने पर साक्षात् आत्मा को ही होता है इस विषय के लिए ऋषियों की सम्मति भी स्पष्ट है जैसे कि—

'न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति न मनः" (केन प्रथम खं० मं० ३)

(उस ब्रह्म की प्राप्ति न चक्षु से, न वाणी से और न मन से हो सकती है)

अतः यहाँ आत्मा के ही प्रत्यक्ष का प्रकरण है। दूसरी दो अवस्थाओं का भी यहाँ कोई विरोध नहीं, क्योंकि इन्द्रियों से इसका भी प्रत्यक्ष नहीं होता, तथा इसका प्रत्यक्ष भी ज्ञान के निर्मल हो जाने पर ही होता है। यह प्रसंग जीवात्मा के प्रत्यक्ष का मान लेने पर इसके संसर्ग में आये हुए प्राणों के सन्निवेश की भी व्यवस्था ठीक बैठ जाती है, और अणु शब्द का भी 'जो कि परिमाण अर्थ में ही प्रसिद्ध है' सूक्ष्म अर्थ नहीं करना पड़ता। इसी प्रकार—

'बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव ह्याराग्रमात्रो ह्यवरोऽपि दृष्टः" (श्वे० ५।८)

(बुद्धि के गुण से और आत्मा के गुण से आर के अग्र भाग के समान एक और भी देखा गया है)।

इत्यादि आर के अग्र भाग आदि की उपमा देने वाले उन्मानों से भी आत्मा का परिमाण अणु सिद्ध है।

वि० बो०—भगवन् ! लोग ऐसा समझते हैं कि इस श्रुति में बुद्धि के गुण से ही आत्मा को आराग्रमात्र कहा गया है वस्तुतः आत्मा का परिमाण तो विभु ही है। बुद्धि का परिमाण आराग्र के समान है और बुद्धि है आत्मा की उपाधि, अतः बुद्धि के परिमाण से ही यहाँ जीव को अणु कह दिया गया है, जैसे कि शरीर उपाधि से आत्मा अपने आपको स्थूल तथा कृश कहा करता है।

म० व्या०—महात्मन् ! ऐसी बात नहीं, आप यदि सारी श्रुति का अर्थ करेंगे तो स्वयं निश्चय कर सकेंगे कि यहाँ बुद्धि के ही गुण का नहीं, आत्मा के भी गुण का उल्लेख है। इस श्रुति का अर्थ हम बता चुके हैं। यहाँ महर्षि श्वेताश्वतर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ने बुद्धि के और आत्मा के दोनों के परिमाणों को मिलाकर लिखा है। आप तो कहते हैं कि अकेले आत्मा का परिमाण विभु है, परन्तु यदि बुद्धि के परिमाण को साथ न मिलाते अकेले आत्मा के ही परिमाण का उल्लेख करते और लेखक होते महर्षि श्वेताश्वतर तो वे आर की नोक का चालीस हजारवां भाग जीव का परिमाण लिखते। क्योंकि अन्यत्र उन्होंने जीव का परिमाण बाल की नोक का दस हजारवां भाग लिखा है, और बाल की नोक आर की नोक से बहुत सूक्ष्म होती है, यहाँ उन्होंने बुद्धि और आत्मा के परिमाण को मिला कर लिखा है, और बुद्धि आत्मा से बहुत स्थूल है, अतः सम्मिलित परिमाण को आर की नोक के समान लिख दिया है।

ठण्डे गंगाजल में गोता लगाते ही सारे शरीर में शीत स्पर्श का अनुभव होता है। यदि आत्मा शरीर के एक भाग हृदय में ही है तो चैतन्य भी उतने ही स्थान में होगा। तब फिर सारे शरीर में शीत स्पर्श के अनुभव का साधन कौन है? इसके उत्तर में लिखते हैं—

'अविरोधश्चन्दनवत्' २३

कोई विरोध नहीं, यह अनुभव चन्दन के स्पर्श के समान हो सकता है जैसे कि चंदन शरीर के एक भाग में लगाया जाता है और उसके शीतलस्पर्श का अनुभव सारे शरीर में होता है इसी प्रकार आत्मा शरीर के एक भाग में होता हुआ भी सारे शरीर की घटनाओं का अनुभव कर लेता है।

चंदन और आत्मा के अवस्थान में भेद है अतः दृष्टान्त ठीक नहीं, क्योंकि चंदन की स्थिति शरीर के एक भाग में निश्चित है और आत्मा की स्थिति का कोई निश्चय नहीं। इसके उत्तर में लिखते हैं—

'अवस्थितिवैशेष्यादिति चेन्नाभ्युपगमाद्धृदि हि २४

आत्मा की स्थिति भी शरीर के एक भाग हृदय में निश्चित है। प्रमाण पढ़िए 'हृदि ह्येष आत्मा' (प्र० ३.६.) (यह आत्मा हृदय में है) 'स वा एष आत्मा हृदि' (छा० ८.३.३.२) (यह आत्मा हृदय में है) 'कतम आत्मा योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः' (बृ० ४.३.७) (आत्मा कौन है जो कि प्राणों के मध्य में ज्ञानवान् हृदय के अन्दर ज्योतिरूप है)।

ये सब श्रुतिएँ आत्मा के रहने का स्थान शरीर का एक भाग हृदय बतला रही हैं इसलिए चन्दन का दृष्टान्त ठीक है।

अभी दृष्टान्त ठीक नहीं हुआ। एक कमी और है और वह यह कि चंदन सावयव पदार्थ है वह यद्यपि एक स्थान पर लगाया गया है परन्तु फिर भी उसके अवयव सारे शरीर में फैलकर शीतलता पहुँचा सकते हैं। जीवात्मा तो अणु तथा निरवयव पदार्थ है, वह सारे शरीर की घटनाओं का अनुभव कैसे कर सकेगा। इसके उत्तर में लिखा है—

गुणाद्वाऽऽलोकवत्। २५

आत्मा यद्यपि शरीर के एक भाग में है। परन्तु उसका गुण अर्थात् ज्ञान रूप प्रकाश बाहर भी फैला हुआ है। जैसे कि सूर्य आदि प्रकाश वाले तत्वों का। अतः वह अपने प्रकाश से सारे शरीर की घटनाओं का अनुभव कर लेता है। जैसे कि कहा भी है—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

'तस्य हैतस्य हृदयस्याग्रं प्रद्योतते' (बृ० ४।४।२)

(उस हृदय का अग्र अर्थात् चारों ओर का भाग चमक रहा है) जिस प्रकार हृदय के अन्दर बैठे हुए आत्मा का ज्ञान रूप प्रकाश हृदय के बाहर भी फैला हुआ है, ठीक उसी प्रकार उसका सारे शरीर में और शरीर के बाहर भी फैल जाना सम्भव है।

गुण गुणी से बाहर कैसे रह सकेगा। क्योंकि फूल का या कपड़े का सफेद रूप उसका गुण है, और वह फूल या कपड़े से बाहर नहीं रह सकता। इसके उत्तर में लिखते हैं—

व्यतिरेको गन्धवत् ॥२६॥

गुणों की अपने-अपने आधार से बाहर भी सत्ता देखी गई है। जैसे कि कस्तूरी के गंध की। इसलिए आत्मा का प्रकाश भी अपने आधार से बाहर फैल सकता है।

यहाँ यह शंका की जा सकती है कि कस्तूरी के परमाणु कस्तूरी से निकल कर वायुमण्डल में फैलते रहते हैं, उन्हीं के साथ गये हुए गंध की बाहर प्रतीति होती है। परन्तु यह बात ठीक नहीं। यदि कस्तूरी से उसके परमाणु इस प्रकार प्रतिक्षण निकलते रहें तो उनका तोल कम हो जाना चाहिए। परन्तु वर्षों शीशी में रक्खी हुई भी कस्तूरी तोल में कम नहीं होती। हाँ ऐसे पदार्थ भी हैं जिनके अवयवों का संयोग बहुत शिथिल होता है और वे परमाणुओं में पृथक् २ होकर वायु में फैलते हुए सारे ही समाप्त हो जाते हैं जैसे कि कपूर। वस्तुतः कपूर भी मूल पदार्थ नहीं। यह केले से पृथक् किये गए उन अवयवों का समुदाय है जिनका स्वभाव ही उड़ने का है। केले में ही ऐसे भी अवयव हैं जिनके साथ होते हुए ये अवयव उड़ न सकते और केले की सत्ता तक उसके साथ ही रहते। और अब भी इनकी ही नहीं केले की भी सत्ता समाप्त हो गई है, क्योंकि इनके पृथक् होने से केले का अवयव सन्निवेश बिगड़ गया है। परन्तु कस्तूरी के अवयवों का संयोग इतना ठोस है कि वह उसके परमाणुओं को पृथक् नहीं होने देता। और यह ही कारण है कि वर्षों रक्खी जाने पर भी उसका परिमाण कम नहीं होता। इसके अतिरिक्त और भी ऐसे दृढ़ पदार्थ हैं जिनका गुण तो बाहर फैला रहता है परन्तु उनके अवयव अपने आधार से कभी पृथक् हो ही नहीं सकते जैसे कि हीरा। इसी का दृष्टान्त पहिले सूत्र में 'आलोकवत्' दिया गया है। हीरे को यदि हजारों वर्ष के बाद भी तोला जावे तो उसका परिमाण कम नहीं होगा, उतना ही रहेगा। अतः विवश यह ही कहना पड़ेगा कि हीरे का प्रकाश तो उससे बाहर निकल रहा है उसके परमाणु नहीं जैसे कि कोहनूर हजारों वर्ष से अब तक चमक ही रहा है। हां यह हो सकता है कि वह कभी नष्ट हो जावेगा, और उसका प्रकाश भी। क्योंकि यह सावयव पदार्थ है, इसके अवयवों का संयोग धीरे-धीरे ढीला हो जावेगा, और यह समय पाकर कभी नष्ट भी हो जावेगा। क्योंकि जो वस्तु उत्पन्न हुई है उसका नाश अवश्य होगा। परन्तु यह नहीं हो सकेगा कि वह रहे और उसका प्रकाश न रहे।

यह एक दृष्टान्त है। और दृष्टान्त एक अंश में हुआ करता है। जीवात्मा की परिस्थिति उससे भिन्न है। वह सावयव नहीं निरवयव है। वह न उत्पन्न हुआ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है और न नष्ट होगा। अत: न उसके पुराने होने की सम्भावना है और न उसके प्रकाश के कम होने की। इसीलिये दृष्टान्त देने के लिये उसके समान नित्य वस्तु संसार में मिल नहीं सकती थी, अतः हीरे का दृष्टान्त दिया गया है। पुराना होने पर हीरे का प्रकाश कुछ मध्यम पड़ सकता है, परन्तु यों तो पुराना होने पर वस्तु के रूप आदि अन्य गुण भी जो कि अपने आधार से बाहर नहीं फैलते मध्यम पड़ जाते हैं। परन्तु हम पहिले भी कह आये हैं कि आत्मा की परिस्थिति इन पदार्थों से भिन्न है। वह नित्य है और उसका प्रकाश भी नित्य है। अत: न इसके नष्ट होने की सम्भावना है, और न इसका प्रकाश कभी मध्यम पड़ सकता है।

तथा च दर्शयति ॥२७॥ पृथगुपदेशात् ॥२८॥

इसी प्रकार उपनिषत्कार तत्वज्ञानी ऋषि दिखला रहे हैं, और आत्मा के ज्ञान का उससे पृथक् भी फैले रहने का उपदेश दे रहे हैं। जैसे कि—

यत्रैष एतत्सुषुप्तोऽभूत्, य एष विज्ञानमयः पुरुषस्तदेषां प्राणानां विज्ञानेन विज्ञानमादाय य एषोऽन्तरहृदय आकाशस्तस्मिन् शेते। (ब्र० २।१।१७)

(वह इन प्राणों अर्थात् इन्द्रियों के विज्ञान को (विज्ञायतेऽनेनेति विज्ञानम्) ज्ञान की साधन इन्द्रियों की शक्ति का, अपने विज्ञान से समेट कर, जोकि यह हृदय के अन्दर आकाश है उसमें सोता है)।

महात्मन् ! देखिये इससे अधिक स्पष्टीकरण श्रुति और क्या करेगी। यहाँ विज्ञान का विज्ञान से समेट लेना, और आत्मा का हृदयाकाश में सोना दोनों ही ध्यान देने योग्य बातें हैं।

इन्द्रियों की शक्तियें बाह्य वस्तुओं के विज्ञान में साधन हैं। इसलिये उन्हें भी यहाँ विज्ञान कह दिया गया है जैसे कि—प्राण के साधन अन्न को "अन्नं वै प्राणिनां प्राणाः" (अन्न ही प्राणियों के प्राण हैं) इस वाक्य में प्राण कह दिया गया है।

आत्मा हृदय में बैठा हुआ बाहर काम करने वाली इन्द्रियों की शक्तियों को समेट रहा है। अब उस अन्दर बैठे हुए को उनकी बाहर की शक्तियों को समेटने के लिये कोई साधन चाहिये। और वह साधन यहाँ बतलाया गया है आत्मा का विज्ञान। उसका विज्ञान भी इन्द्रियों की शक्तियों को तब ही समेट सकेगा जब कि उसकी पहुँच इन्द्रियों तक हो। और उस पहुँच का इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं कि उस विज्ञान को आत्मा से बाहर भी इन्द्रियों तक फैला हुआ माना जावे। इस प्रकार इस एक ही उपनिषद् वाक्य ने इतने विषयों पर प्रकाश डाला है।

१—आत्मा का विज्ञान आत्मा के स्वरूप तक ही सीमित नहीं है वह उसके बाहर भी दूर तक फैला हुआ है।

२—आत्मा का विज्ञान आत्मरूप ही नहीं प्रत्युत वह उससे पृथक् उसका गुण है।

३—आत्मा ने सोते समय अपने गुण विज्ञान के द्वारा इन्द्रियों की शक्तियों को तो समेट लिया है विज्ञान को नहीं।

तद्गुणसारत्वात्तु तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत् ॥२९॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

किसी-किसी स्थान पर उपनिषदों में आत्मा को भी जो 'प्राज्ञ' (ईश्वर) की तरह विभु कह दिया जाता है—वह इसके इस ज्ञान गुण के ही बल पर कहा जाता है। क्योंकि इसका विज्ञान गुण इससे बाहर भी फैला हुआ है। अन्यथा आत्मा तो अणु है और हृदय के एक भाग में ही विराजमान है उसके लिए ऐसा कहा नहीं जा सकता था।

वि० बो०—भगवन् ! इस सूत्र के 'तद्गुणसारत्वात्' पद में आये हुए तत् शब्द से, बुद्धि नामक उपाधि के ग्रहण में क्या आपत्ति है। ऐसा मान लेने पर संगति इस प्रकार लग जावेगी कि आत्मा तो व्यापक ही है परन्तु उसकी उपाधि बुद्धि के अणु होने से उसे ससार अवस्था में अणु कह दिया गया है। और इस प्रकार जितने भी अणुवाद हैं वे सब उपाधि के अणु होने के कारण संगत हो सकते हैं। और जहाँ उसे विभु कह दिया गया है वे वचन उसके परमार्थ विभुरूप को लेकर संगत हो सकते हैं।

म० व्या०—महात्मन् ! यह भाव आप अपनी ओर से कल्पित कर सकते हैं। सूत्रकार के शब्दों से यह प्रकट नहीं होता क्योंकि ऊपर से अणु आत्मा के गुण विज्ञान का प्रसंग छिड़ा हुआ है, और तत्पद पूर्व का परामर्श किया करता है अतः तत्पद से विज्ञान गुण का ही ग्रहण किया जा सकता है।

वि० बो०—भगवन् ! तत्पद बुद्धिस्थ का भी तो परामर्श किया करता है अतः इस प्रसंग में सूत्रकार की बुद्धि में विद्यमान बुद्धि का परामर्श तत्पद बुद्धि से ही किया होगा।

म० व्या०—महात्मन् ! बुद्धिस्थ का परामर्श तत्पद से तब हुआ करता है जब कि प्रसंग में "तत्' के परामर्श के लिए कोई पदार्थ न हो। यहाँ तो पहले से विज्ञान का प्रसंग चला आ रहा है उसको छोड़कर बुद्धिस्थ पदार्थ का परामर्श न्याय-संगत नहीं। और ग्रंथकार का भा यह कर्त्तव्य हुआ करता है कि यदि उस प्रसंग में आये हुए किसी पद को छोड़कर किसी दूसरे का प्रसंग बदलना हो तो तत्पद का उल्लेख न कर जिसका प्रसंग चलाना है उस अर्थ को उसके वाचक शब्द से कह दे, परन्तु यहाँ ऐसा किया नहीं गया, अतः यहाँ बुद्धि का नहीं, प्रसंग में आते हुए ज्ञान का ही परामर्श किया जावेगा। आप इस सारे ही अधिकरण के सूत्रों पर दृष्टिपात करें कि क्या कहीं आत्मा के विभुत्व का और बुद्धि उपाधि का भी उल्लेख मिलता है ? आपको ऐसी झलक कहीं भी दीख न पड़ेगी। अतः इस सूत्र के तत्पद से विज्ञान का ही ग्रहण करना ठीक है, बुद्धि का नहीं।

वि० बो०—भगवन् ! ऐसा माना जाता है कि उपनिषदों में सर्वत्र परब्रह्म का ही प्रतिपादन है उसके अतिरिक्त और कोई चैतन्य है ही नहीं; जैसा कि उपनिषदों में स्पष्ट ही कहा गया है—

नान्योऽतोस्ति द्रष्टा नान्योतोस्ति विज्ञाता (बृ० ३।७।२३)

(उसके अतिरिक्त और कोई द्रष्टा नहीं और न और कोई ज्ञानी है) तथा **"नान्योतोस्ति द्रष्टृ, श्रोतृ मन्तृ विज्ञातृ"** (छा० ६।८।७) (उससे भिन्न और कोई देखने वाला, सुनने वाला, मनन करने वाला और ज्ञान करने वाला नहीं) जब

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कि उपनिषदों की यह सम्मति है तो आपके कथन के अनुसार जीव पृथक् चेतन कैसे मान लिया गया ?

म० व्या०—महात्मन् ! यह जो कुछ कहा गया है ठीक ही है, केवल भाव के समझने में थोड़ा अन्तर है। क्योंकि सारे विश्व को, उसके अवान्तर भेदों को तथा उनके गुण कर्म स्वभावों को सर्वांश में जानने वाला भगवान् के अतिरिक्त और कोई चेतन नहीं ? तात्पर्य यह है कि और सब चेतन अल्पज्ञ अर्थात् थोड़ा जानने वाले हैं। ये दोनों वचन एक ही भाव को कह रहे हैं। अब आप बतलाइये कि इन वाक्यों से जीव का निषेध कैसे हो गया ?

वि० बो०—भगवन् ! 'तत्त्वमसि" (छां० ६।६।७) इस वाक्य में तत्पद मायाऽवच्छिन्न ब्रह्म का 'त्वं" पद अविद्याऽवच्छिन्न ब्रह्म का और "असि" पद सत् अर्थात् शुद्ध ब्रह्म का वाचक है, इनके समन्वय का और कोई उपाय न होने से भाग-त्यागलक्षणा करके तत्पद की माया उपाधि का; और 'त्वं' पद की अविद्या उपाधि का त्याग कर शुद्ध ब्रह्म शेष रह जाने से तीनों पदों का अखण्ड ब्रह्म अर्थ किया जाता है, इससे जीव और ब्रह्म का अभेद स्पष्ट सिद्ध है और जबकि जीव ब्रह्म से अभिन्न सिद्ध हो गया तो उसका परिमाण विभु ही मानना पड़ेगा। इसमें अणु की प्रतीति बुद्धि उपाधि के कारण से व्यावहारिक है।

म० व्या०—महात्मन् ! "तत्त्वमसि" वाक्य में उपाधि की कल्पना कर अर्थ करने की आवश्यकता नहीं। सारे प्रसंग का भली-भाँति स्वाध्याय करने से, बिना ही उपाधि-कल्पना किये, समन्वय ठीक बैठ जाता है। प्रसंग यह है—

"स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो" (छां० ६।६।५)

जो यह सूक्ष्म तत्त्व है, यह आत्मा है, और इस आत्मा से ही आत्मवान् यह जड़ चेतन जगत् है। अर्थात् यह सूक्ष्म तत्त्व ही इन सबमें आत्मा की तरह प्रविष्ट हुआ इस सबको चला रहा है, यह सूक्ष्म तत्त्व ही सत्य कहलाता है और सबके अन्दर होने से आत्मा है, हे श्वेतकेतो ! "त्वम्" अर्थात् तू भी "तत्" अर्थात् तदात्मक—उसी आत्मा वाला है। तात्पर्य यह है कि तेरे आत्मा के अन्दर भी वही आत्मा प्रविष्ट है, अतः तेरा भी वही आत्मा है। वहाँ तत् शब्द से पहले, इससे परामर्श करने योग्य दो शब्द आये हैं, एक "आत्मा" और दूसरा "ऐतदात्म्यम्"। यदि आत्मा का परामर्श किया जावे तो आत्मा यहां पर शुद्ध ब्रह्म का नाम है और "त्वम्" अल्पज्ञ चेतन का। इन दोनों का अभेद अन्वय न हो सकेगा और फिर जीव में उपाधि की कल्पना कर जीव ब्रह्म का अभेद सिद्ध करने का अवसर आवेगा और यदि "ऐतदात्म्यम्" शब्द का परामर्श किया जाये तो "त्वम्" अर्थात् जीव के साथ इसका अन्वय करते समय कोई कठिनाई न होगी क्योंकि "ऐतदात्म्यम्" का अर्थ है आत्मा वाला। और यह ब्रह्म रूप आत्मा जीव में ओतप्रोत है ही, अतः जीव को इस आत्मा वाला कहने में कोई आपत्ति सामने नहीं आती। बिना ही उपाधि की कल्पना किये "तत्" और "त्वम्" शब्द का अन्वय ठीक बैठ जाता है और "असि" शब्द क्रियावाचक भावबोधक होता हुआ उनके साथ अन्वित हो जाता है।

अब बात विचारणीय यह रह जाती है कि "तत्" पद से आत्मा पद का परामर्श किया जावे अथवा 'ऐतदात्म्यम्' का। इस विषय को भी उपनिषत्कार ऋषि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

के यथाश्रुत शब्दों से ही निर्णय करने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती। इन दोनों शब्दों में से एक "आत्मा" पुल्लिग है और दूसरा "ऐतदात्म्यम्" नपुंसक लिंग है। परामर्श करने वाला "तत्" शब्द भी नपुंसकलिंग ही है इसलिए तत् शब्द से "ऐतदात्म्यम्" शब्द का ही परामर्श होगा, पुल्लिग होने से आत्मा का नहीं, और परामर्श करने के बाद अन्वयबोध करते समय कोई कठिनाई भी न होगी क्योंकि ब्रह्म जीव के अन्दर व्यापक है ही और इस व्यापकता का ही बोध "त्वम्" के साथ "ऐतदात्म्यम्" का अन्वय करने से होगा और किसी अर्थ का नहीं। इसलिए जीव और ब्रह्म का अभेद सिद्ध नहीं होता और इसलिए जीव अणु ही है व्यापक नहीं।

सुषुप्ति तथा प्रलय में आत्मा का कोई ज्ञान नहीं होता तो क्या उस समय वह ज्ञान से रहित ही होता है? और यदि हां, तो फिर यह उसका स्वाभाविक गुण कैसा? इसके उत्तर में लिखते हैं—

"यावदात्मभावित्वान्न दोषस्तद्दर्शनात्"। ३०

(आत्मा का गुण ज्ञान सदा उसके साथ ही रहता है अतः सुषुप्ति तथा प्रलय में भी यह चैतन्य उसी में रहता है इसलिए कोई दोष नहीं)। हां, उसके अपने ज्ञान के प्रकाश से जो विषयों का भानरूपी ज्ञान जागते हुए हुआ करता है, वह सुषुप्ति में नहीं होता, क्योंकि उस समय तमोगुण प्रधान अवस्था होने के कारण वह अपने साधन इन्द्रियों और मन से उपयोग नहीं ले सकता। मनुष्य को जागने पर यह स्मृति हुआ करती है कि मैं आज सुख से सोया, यह सुषुप्ति में सुख से सोने की स्मृति सुषुप्ति में हुए किसी अनुभव के बिना नहीं हो सकती, और वह अनुभव उसके आत्मा को उसके चैतन्य के बिना नहीं हो सकता, अतः आत्मा का ज्ञान सुषुप्ति में भी उसके साथ विद्यमान था और प्रलय में भी। क्योंकि प्रलय के बाद सृष्टिकाल में जब जीव योनि में आता है उसी प्रकार विज्ञान का कार्य आरम्भ हो जाता है, और विषयों के अनुभव होने लगते हैं, इससे स्पष्ट सिद्ध है कि प्रलय में भी जीव के पास उसका अपना ज्ञान सुरक्षित था, जिससे कि वह सृष्टि के आरम्भ में ही काम लेने लग गया।

तपश्चर्या तथा योग समाधि आदि से जब जीव का ज्ञान बढ़ता है तो उसमें इस नवीन ज्ञान की वृद्धि का क्या प्रकार है क्योंकि नित्य वस्तु में किसी भी नये तत्त्व का समावेश नहीं हो सकता इसके उत्तर में लिखते हैं कि—

"पुंस्त्वादिवत्त्वस्य सतोऽभिव्यक्तियोगात्। ३१

आत्मा के ज्ञान में कोई वृद्धि नहीं होती। उसका ज्ञानरूपी प्रकाश जहां तक उसकी शक्ति है सदा ही विस्तृत रहता है। केवल साधनों के अभाव से उसकी अभिव्यक्ति न होने के कारण वह प्रकट नहीं होता। तपश्चर्या तथा योग आदि साधनों से उसकी अभिव्यक्ति हो जाती है। जैसे कि मनुष्यों में बाल्य अवस्था में पुरुषत्व शक्ति विद्यमान तो होती है परन्तु उस समय उसके विकास के साधन न होने से वह प्रकट नहीं होती। जब युवा अवस्था में विकास के साधन संचित हो जाते हैं तब वह प्रकट हो जाया करती है, अतः तपश्चर्या तथा योगादि साधनों से जीव के विद्यमान विज्ञान का विकास होता है नई उत्पत्ति नहीं। इसलिए कोई दोष नहीं।

यदि ब्रह्म से भिन्न अणु आत्मा न मानकर सब शरीरों में एक ही व्यापक आत्मा मान लिया जावे तो क्या क्षति है? इसके उत्तर में लिखते हैं—

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

"नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसंगोऽन्यतरनियमो वान्यथा।" ३२

(ऐसी अवस्था में तो आत्मा की उपलब्धि (ज्ञान) अर्थात् मोक्ष तथा अनुपलब्धि (अज्ञान) अर्थात् बन्ध प्रत्येक जीव को सदा ही प्रतीत होने चाहिएँ क्योंकि वह आत्मा सब शरीरों में तथा शरीरों से बाहर मुक्तों तथा अमुक्तों में भी एक ही है। इसलिए वह किसी स्थान से बद्ध हुआ और किसी स्थान से मुक्त कोई भाग उसका ज्ञानी हुआ और कोई अज्ञानी। इस प्रकार ये दोनों अवस्थाएँ अपने अन्दर उसे हर समय प्रतीत होनी चाहिएँ अथवा बन्ध और मोक्ष, ज्ञान और अज्ञान इन दो जोड़ों में से एक एक चीज अर्थात् मोक्ष और ज्ञान अथवा बन्ध और अज्ञान, इनमें से किसी एक का नियमित संस्थान उसमें मानना पड़ेगा, इसके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं परन्तु ये दोनों ही अवस्थाएँ उसके अन्दर मानी नहीं जा सकती क्योंकि न तो आत्मा अपने अन्दर एक ही काल में बन्ध और मोक्ष का अर्थात् दुःख और सुख का अनुभव करते हुए दिखाई देते हैं और न कोई सदा बद्ध ही, अथवा मुक्त ही, अर्थात् दुःखी ही अथवा सुखी ही देखने में आता है। अतः सब शरीरों में व्यापक एक आत्मा नहीं माना जा सकता। आत्मा सब शरीरों में भिन्न भिन्न है और अणु होते हुए प्रत्येक शरीर के हृदय देश में रहते हैं। हम समझते हैं कि इस विषय को भली-भाँति स्पष्ट कर दिया गया है अतः अधिक न कह, हम अपने भाषण को यहीं विराम देते हैं।

आत्मबोध—पूज्य महर्षे ! आपने युक्तियों और प्रमाणों के द्वारा इस गम्भीर विषय का जितनी सरलता और सुन्दरता के साथ निरूपण किया है यह आपका ही भाग था। इसके लिए हम लोग आपके अत्यन्त कृतज्ञ हैं। अब मैं प्रधान जी की आज्ञानुसार पूज्य महर्षि जैमिनि जी की सेवा में सविनय प्रार्थना करूँगा कि वे भी अपने विचार इस विषय पर प्रकट कर हमें अनुगृहीत करें।

म० जै०—महात्मन् ! आपकी प्रेरणा के अनुसार मुझे दो शब्द कह देने में कोई आपत्ति नहीं। आप जानते ही होंगे कि यह विषय हमारे शास्त्र के अधिकार से बाहर की वस्तु है। वेद के एक भाग कर्मकाण्ड का स्पष्टीकरण करना ही हमने अपने जीवन का लक्ष्य बनाया हुआ है, यह विषय भ्राता व्यासदेव जी के व्याख्यान से सम्बन्ध रखता है। अध्यात्मविषय के विवेचन का भार उन्होंने ही अपने कन्धों पर लिया है, और प्रस्तुत विषय का अपने वक्तव्य में स्पष्टीकरण भी उन्होंने भलीभाँति कर दिया है। वेद के ही दो भागों का हम दोनों ने पृथक्-पृथक् व्याख्यान किया है, इस नाते से हमारा और उनका तंत्र समान ही है, अतएव मैं उनके वक्तव्य का अनुमोदन करता हुआ अपने कथन को यहाँ ही समाप्त करता हुआ अपना स्थान ग्रहण करता हूँ।

आ० बो०—पूज्यपाद महर्षे ? आपने महर्षि व्यासदेव जी के वक्तव्य का अनुमोदन कर उनके निर्णीत किये हुए विषय की हमारे हृदयों में जमी हुई धारणा को और भी पुष्ट कर दिया है, इसलिए हम लोग आपके कृतज्ञ हैं। इसके बाद मैं तार्किक शिरोमणि पूज्यपाद महर्षि कणाद जी से प्रार्थना करूँगा कि वे इस विषय पर अपने शास्त्र के आधार पर प्रकाश डाल हमें अनुगृहीत करें।

म०क०—उपस्थित विद्वन्मण्डल तथा जिज्ञासु सज्जनो ! यद्यपि वैशेषिक दर्शन में इस विषय का स्पष्टीकरण हमने भलीभांति कर दिया है, परन्तु फिर भी आपकी प्रेरणानुसार हम इस विषय का निर्णय करते हुए आत्मा के अणु परिमाण का ही समर्थन करते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वि० बो०—भगवन् ! आपने अपने दर्शन में लिखा है।

'विभवान् महानाकाशस्तथा चात्मा' (वै० अ० ७ आ० १ सू० १२)

(आकाश व्यापक और महान् है और इसी प्रकार आत्मा भी), इसी प्रकार आपके इस लेख से तो आत्मा व्यापक सिद्ध होता है अणु नहीं।

म० क०—हाँ इस ग्रंथ का गहराई में जाकर अध्ययन किये बिना स्थूल दृष्टि से इस सूत्र का अर्थ यह ही प्रतीत होगा। परन्तु वस्तुतः इस सूत्र का भाव और है। जिस अणुवाद का हमने समर्थन किया है उसी का प्रतिपादन इस शास्त्र में किया गया है, इसके लिए हम आपको इस ग्रंथ का एक प्रकरण सुनाते हैं।

'आत्मसंयोगप्रयत्नाभ्यां हस्ते कर्म' (अ० ५ आ० १ सूत्र १)

कोई आदमी मूसल हाथ में लेकर ओखली में धान कूट रहा है, मूसल को ओखली में मारते समय उसके हाथ में क्रिया की उत्पत्ति के साधनों का वर्णन इस सूत्र में किया गया है, कहा गया है कि आत्मा के प्रयत्न और संयोग से हाथ में क्रिया उत्पन्न होती है।

हाथ में क्रिया तो प्रयत्न और आत्मा के संयोग से हो गई, परन्तु मूसल में क्रिया का साधन क्या है? इसके उत्तर में लिखते हैं—

'तथा हस्तसंयोगात् मुसले कर्म' (२)

(इसी प्रकार हाथ के संयोग से मूसल में क्रिया उत्पन्न हुई)

फिर जब कि मूसल ओखली की चोट खाकर ऊपर की ओर उछला तो उस मूसल की क्रिया में क्या साधन है? क्या प्रयत्न वाले हाथ का संयोग ही इस क्रिया में भी कारण है? इसके उत्तर में लिखते हैं—

'अभिघातजे मुसलादौ कर्मणि व्यतिरेकादकारणं हस्तसंयोगः' (३)

मूसल आदि की यह क्रिया ओखली के साथ हुए प्रबल संयोग रूप अभिघात से उत्पन्न होती है, अतः पहले की तरह प्रयत्न वाले हाथ का संयोग इस क्रिया में कारण नहीं क्योंकि यह क्रिया उल्टी है।

मूसल के ऊपर की ओर उछलने से जो अब हाथ में क्रिया उत्पन्न हुई, क्या उसका कारण भी प्रयत्न वाले आत्मा का हाथ से संयोग ही है? इसके उत्तर में लिखते हैं—

'तथात्मसंयोगो हस्तकर्मणि' (४)

(इसी प्रकार इस बार की हाथ की क्रिया में भी आत्मा का संयोग कारण नहीं)।

'अभिघातान्मुसलसंयोगाद्धस्ते कर्म' (५)

इस बार ओखली के अभिघात से मूसल में क्रिया उत्पन्न हुई है, और उस क्रियावान् मूसल के संयोग से हाथ में क्रिया उत्पन्न हुई है।

"आत्मकर्म हस्तसंयोगाच्च" (६)

(और इस क्रियावान् हाथ के संयोग से आत्मा में क्रिया उत्पन्न हुई है)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस प्रकरण के इस अन्तिम सूत्र का भाव सुनकर आप समझ गये होंगे कि हमने स्पष्ट शब्दों में आत्मा में क्रिया को स्वीकार किया है। यदि हम आत्मा को विभु मानते होते तो उसमें क्रिया को स्वीकार कभी न करते. क्योंकि मध्यम अथवा अणु परिमाण वाली वस्तु में तो क्रिया का होना सम्भव है क्योंकि वह हिल जुल नहीं सकती, और इधर उधर आ जा सकती है, परन्तु एक विभु परिमाण वाले पदार्थ में क्रिया का होना सर्वथा असम्भव हैं, और यहां हमने आत्मा में क्रिया मानी है अतः इसका परिमाण अणु ही मानना पड़ेगा और कुछ नहीं। क्योंकि मध्यम परिमाण मानने पर आत्मा को विनाशी मानना पड़ जावेगा जो कि हमारे सिद्धान्त के विरुद्ध है।

इसी विषय को एक दूसरे प्रकरण में भी हमने ध्वनित किया है उसे भी सुनिये—

साधर्म्य वैधर्म्य के प्रकरण में कुछ पदार्थों का वैधर्म्य (जो धर्म उसमें न रहता हो) कहते समय लिखा है—

("दिक्कालावाकाशश्च क्रियावद्वैधर्म्यान्निष्क्रियाणि")

अ०५ आ० २ सू० २१)

"एतेन कर्माणि गुणाश्च व्याख्याताः" (२२)

दिशा काल और आकाश ये तीनों क्रियावान् पदार्थों से विधर्मा हैं इसलिए क्रिया नहीं है। और इसी प्रकार कर्मों और गुणों में भी क्रिया नहीं है क्योंकि वे भी क्रियावान् पदार्थों से विधर्मा हैं (२१-२२)। यहां गुण और कर्म तो द्रव्यों में ही रहते हैं, इसलिए उनमें तो आना जाना आदि क्रियाओं का सम्भव ही नहीं, जिन द्रव्यों में वे रहते हैं उनमें क्रिया हो सकती है, गुणों में और कर्मों में नहीं, इसलिए इनमें क्रिया का निषेध किया गया है। दूसरे तीन पदार्थ दिशा, काल और आकाश व्यापक हैं उनमें क्रिया हो ही नहीं सकती, इसलिए उनमें भी क्रिया का निषेध किया गया। यदि और भी किसी द्रव्य में क्रिया न होती तो उसकी भी गणना इन्हीं पदार्थों में कर देते, परन्तु ऐसा नहीं किया गया, इससे स्पष्ट सिद्ध है कि और सब पदार्थ क्रिया वाले हैं और जिनमें क्रिया है, उन्हें व्यापक माना नहीं जा सकता। आत्मा भी उन तत्त्वों में से ही एक है जिनमें कि क्रिया मान ली गई है। और जबकि उसमें क्रिया है तो वह व्यापक हो नहीं सकता, अतः उसका परिमाण इस प्रकरण में भी अणु ही माना गया है।

वि० बो०—भगवन्! ठीक है। आपके इन दोनों प्रकरणों से आपके शास्त्र के अनुसार आत्मा अणु ही सिद्ध होता है, परन्तु आपने हमारे पूर्व दिये हुए उद्धरण के अनुसार अपने इसी शास्त्र के एक सूत्र में आत्मा को आकाश की तरह व्यापक भी कहा है इसका क्या तात्पर्य है?

म० क०—महात्मन्! आपके कथन का तात्पर्य हम समझ गये, आप इस शास्त्र में दो विरोधी सिद्धान्तों के वर्णन का निर्देश कर रहे हैं परन्तु इसके साथ ही आप इस ओर भी अवश्य ध्यान देंगे कि साधारण मनुष्य भी अपने कथन को विरोध से बचाने का यत्न करता है तो फिर एक दार्शनिक इतने बड़े विरोध को अपने कथन में अथवा लेख में कैसे स्थान दे सकेगा?

(शेष अगले अंक में)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आर्य समाज के गौरव

श्री पं० शिवकुमार शास्त्री

(संसद् सदस्य)

मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक पण्डित राकेशरानी द्वारा सैनी प्रिण्टर्स दिल्ली में छपा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जन-ज्ञान (मासिक)
१५९७, हरध्यान सिंह मार्ग
करोल बाग, नई दिल्ली-५
दूरभाष : ५६६६३६

D-A.V.P. से स्वीकृत
मार्च, १९७६
चैत्र २०३०

रजि० नं०
डी०—(सी०) २०१
R.N.No. 107119/65

१४ मार्च जन्म दिवस पर : पं० भारतेन्द्रनाथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi